वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक २ फरवरी २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
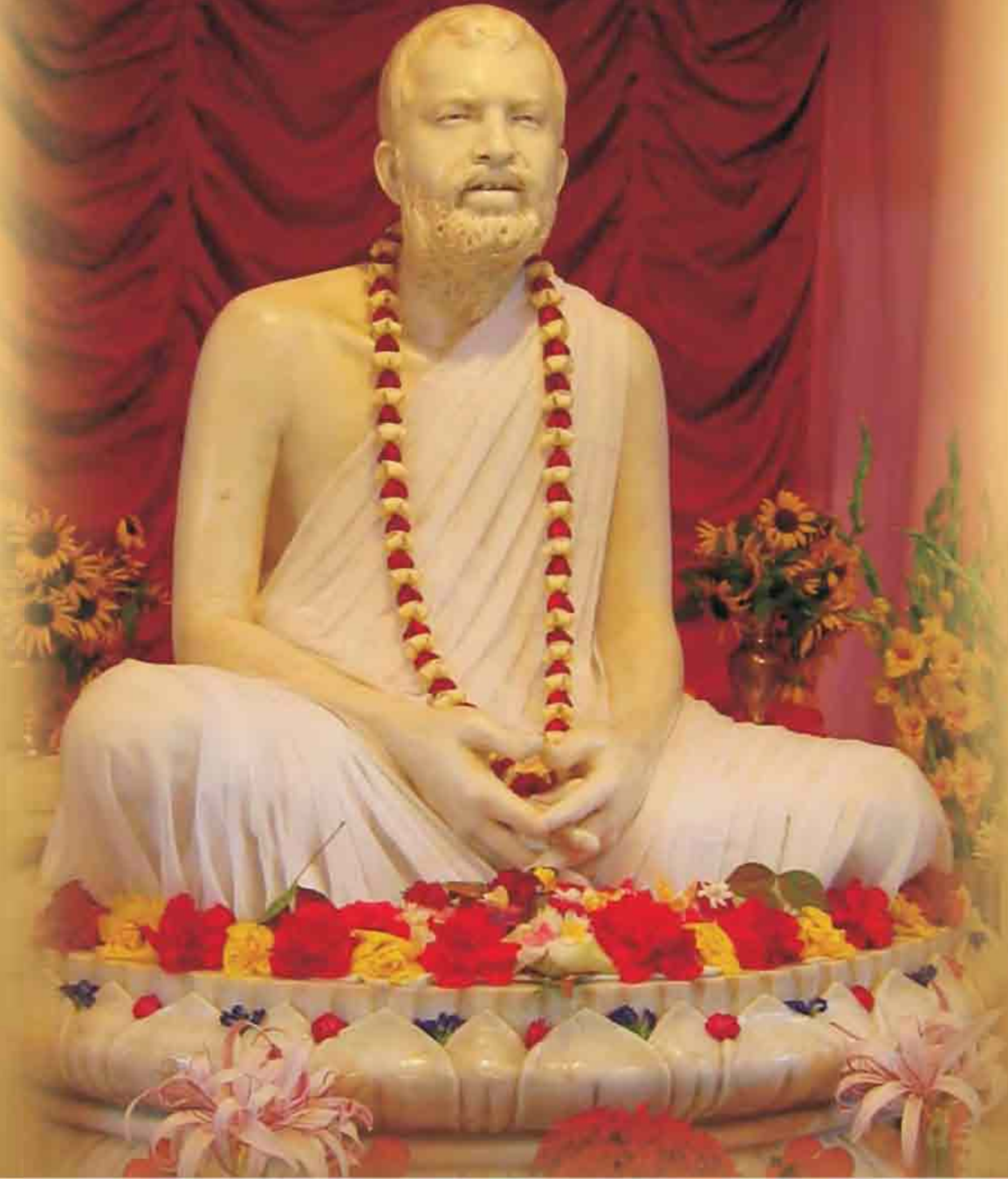
॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक २

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–

१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124

IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षो के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmraipur.org

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीरामकृष्ण देव की यह सुन्दर मूर्ति रामकृष्ण मठ, बेलुड़ मठ, हावड़ा की है ।

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१३ महाशिवरात्रि
१७ श्रीरामकृष्ण देव

आवश्यक सूचना

१७ फरवरी, २०१८ को भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जन्म-जयन्ती के अवसर पर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर स्थित मन्दिर में विशेष-पूजा, होम और व्याख्यान होंगे ।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
स्व. श्री हेमधर दीवान, ताला, जिला, बेमेतरा (छ.ग.)	१०००/-
डॉ. ए. एस. वन्तामुत्ते, तिलक वाड़ी, बेलगवी (कर्नाटक)	१,१००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
३८८. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर	बांगुर गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज, डीडवाना, नागौर (राजस्थान)
३८९. श्री झाडूराम वर्मा, तुलसी (नेवरा) जि.-रायपुर (छ.ग.)	स्वामी आत्मानन्द विद्यापीठ, ग्रा.पो.-नेवरा, जि.रायपुर (छ.ग.)
३९०. ” ”	गवर्नमेंट हाई स्कूल, तुलसी, पो. नेवरा, जि.-रायपुर (छ.ग.)
३९१. ” ”	सरस्वती शिशु मंदिर, तुलसी, पो. नेवरा, जि.-रायपुर (छ.ग.)
३९२. ” ”	प्राइमरी स्कूल, ग्राम.-तुलसी, पो. नेवरा, जि.-रायपुर (छ.ग.)
३९३. ” ”	प्राइमरी स्कूल, ग्राम.पो. मढ़ी,वाया-बैकुण्ठ, जि.-रायपुर (छ.ग.)
३९४. श्री रामकिशोर शर्मा, रायसेन (म.प्र.)	गवर्नमेंट कॉलेज, ओबेदुल्लागंज, रायसेन (म.प्र.)
३९५. श्री ज्ञानदेव गभने, श्री रामकृष्ण सेवाश्रम, भंडारा (महा.)	डॉ. भीमराव अम्बेडकर गर्वनमेंट कॉलेज, डोगंरगाँव (छ.ग.)
३९६. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़ (पंजाब)	गवर्नमेंट गर्ल्स पॉलीटेक्निक कॉलेज, दीना नगर, जि.गुरुदासपुर
३९७. ” ”	गवर्नमेंट गर्ल्स पॉलीटेक्निक कॉलेज, लाडोवाली रोड,जलंधर
३९८. ” ”	एस.आर.एस. गवर्नमेंट गर्ल्स पॉलीटेक्निक कॉलेज, लुधियाना
३९९. स्व. श्री रामराज प्रसाद एवं स्व. श्रीमती उषा प्रसाद कोलकाता	ऋषिकुल गवर्नमेंट पी.जी. आयुर्वेदिक कॉलेज, देवपुरा, (उ.ख.)
४००. ” ”	शास. आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार
४०१. ” ”	उत्तराखंड आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी, स्टेशन रोड, हर्रावाला (उ.ख.)
४०२. ” ”	जगत नारायण लाल कॉलेज, पो.-खगौल, जि. पटना (बिहार)
४०३. ” ”	नौगोंग कॉलेज, जिला - नगौन (असम)
४०४. ” ”	बांगुर गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज, पाली (राजस्थान)
४०५. ” ”	कॉलेज ऑफ नर्सिंग, सी.आर.पी. लाइन्स, इंदौर (म.प्र.)

वर्ष ५६ फरवरी २०१८ अंक २

श्रीरामकृष्णं शरणं प्रपद्ये

उद्धर्तुकामं दुरिताब्धिमग्नान्
जनान् कृपावश्यतयावतीर्णम्।
घोरे कलौ सर्वजनैकसेव्यं
श्रीरामकृष्णं शरणं प्रपद्ये।।

– पाप-समुद्र में निमग्न लोगों का उद्धार करने के लिये परम करुणावश, जो इस धराधाम पर अवतरित हुए और जो इस घोर कलिकाल में सभी लोगों के आराध्य हैं, मैं उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव की शरण ग्रहण करता हूँ।

कालात्प्रनष्टं शुभयोगमार्गं
ज्ञानस्य भक्तेश्च कृतेश्च तं तम्।
वीक्ष्यात्मयत्नेन विशुद्धसर्वं
श्रीरामकृष्णं शरणं प्रपद्ये।।

– कालचक्र के प्रभाव से ह्रास हो रहे ज्ञान, भक्ति आदि की जिन्होंने अपने प्रयत्न से पुन: प्रतिष्ठा की, उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

पुरखों की थाती

अविश्रामं वहेद्भारं शीतोष्णं च न विन्दति ।
ससन्तोषस्तथा नित्यं त्रीणि शिक्षेत गर्दभात्।।५८५।।

– गधे को देखकर उससे भी तीन चीजें सीखी जा सकती हैं; वह बिना थके हुए भार ढोता रहता है, ठण्डी-गरमी की परवाह नहीं करता और सदा सन्तोषपूर्वक रहता है ।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।५८६।।

– यह अपना है या पराया है, ऐसा विचार छोटी बुद्धि के लोग ही किया करते हैं; परन्तु जो उदार चरितवाले लोग हैं, उनके लिये तो सारी दुनिया ही अपने परिवार के समान है ।

अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति ।
मलये भिल्लपुरन्ध्री चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते ।।५८७।।

– जैसे मलय पर्वत की आदिवासी स्त्रियाँ चन्दन की लकड़ियों से भोजन पकाती हैं, वैसे ही अति परिचय करने से लोगों में अवज्ञा का भाव आता है और बारम्बार कहीं जाने से वहाँ अनादर होने लगता है ।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन-द्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।५८८।।

– भगवान वेदव्यास द्वारा रचित अठारहों पुराणों के सार रूप में दो ही बातें ग्रहणीय हैं – परोपकार ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है ।

विविध भजन

तुम मेरे नाथ ! तुम्हारा मैं

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ प्रणति स्वाकार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं बस प्यार करो तुम प्यार करो।।

इस भव की भूल भूलैया में मेरा मन थककर चूर हुआ,
माया की मोहक काया में फँसकर के तुमसे दूर हुआ,
अब तो करुणाकर करुणा कर भवसागर से तुम पार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस प्यार करो तुम प्यार करो।।

मैंने देखा सारे जग में प्रभु तुम-सा वत्सल और नहीं,
सबके प्रति पावन प्रेम भरा तुम-सा सुखदायक ठौर नहीं,
मेरे पापों की गठरी को करुणानल से तुम छार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस प्यार करो तुम प्यार करो।।

अपनाओगे अब तुम मुझको यों मेरा मानस बोल रहा,
साँसों में श्रद्धा का सौरभ विश्वास निरन्तर घोल रहा,
तुम मेरे नाथ ! तुम्हारा मैं ऐसा कह अंगीकार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस प्यार करो तुम प्यार करो।।

तुमने अनगिन जगजीवों पर जाने कितना उपकार किया,
फल देकर अपनी करुणा का, जड़मय जीवन से तार दिया,
'मधुरेश' पड़ा भव-बन्धन में उसका अब तो उद्धार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस प्यार करो तुम प्यार करो।।

हरिनाम सुधारस पीना

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

ये दुनिया मुसाफिरखाना, मत धोखे में आ जाना।।
स्वाँसा जब बाहर जावे, भीतर आवे न आवे।
है इसका कौन ठिकाना, मत धोखे में आ जाना।।
हरिनाम सुधारस पीना, औरों के लिये भी जीना।
तुम दिल न किसी का दुखाना, मत धोखे में आ जाना।।
पढ़ना रामायण गीता, भजन श्री रघुवर सीता।
प्रभु प्रेम में अश्रु बहाना, मत धोखे में आ जाना।।
कोई ऐसा काम न करना, जिससे हो मन में डरना,
'राजेश्वर' राम रिझाना, मत धोखे में आ जाना।।

आओ आओ भोलेनाथ

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

आओ आओ भोलेनाथ मेरे तन-मन में।।
हाथ में त्रिशूल बैल सवारी,
सिर पर गंगा बहे हहकारी।
भुजंग लिपटे तेरे गौर तन में।। आओ आओ...

भस्म विभूति अंग में सोहे,
वाम भाग गौरी मन मोहे।
भांग खाय भूत मगन नचन में।। आओ आओ...

तीसर आँख काम संहारा,
नभमंडल मच्यो हाहाकारा।
देव, रति गयो तव शरणन में।। आओ आओ...

सदा आनन्द भोले भण्डारी,
सब इच्छा पुरवैं त्रिपुरारी।
जो ध्यावै शिव को निज मन में।। आओ आओ...

कल्पतरु श्रीरामकृष्ण देव का दिव्यस्वरूप प्रकाश

जब जीवों के दुख से कातर होकर भगवान पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब अपनी अद्‌भुत लीला के द्वारा लोगों का कल्याण करते हैं, उन्हें दुख-शोक से मुक्त करते हैं। ईश्वर के सभी कर्म लोकहितार्थ होते हैं। उनकी यात्रायें लोक कल्याणार्थ होती हैं। उनके जीवन की सामान्य घटना भी शिक्षाप्रद, प्रेरक और रहस्यात्मक होती है, जिससे सामान्य जनों को नैतिक, सदाचारी, धर्मपरायण जीवन जीने की शिक्षा मिलती है, योगी ईश्वर की ऐश्वर्यानुभूति करते हैं, भक्तों को भगवद्‌भक्ति की उद्दीपना होती है, तत्त्वज्ञानियों को ईश्वरीय तत्त्व-गूढ़ता का, परमात्मा के दैवी रहस्य की गहनता का बोध होता है।

साधक अपनी साधना से चित्त को शुद्ध कर ईश्वर की दिव्य लीला की रसानुभूति करते हैं, किन्तु कभी-कभी देखा जाता है कि भगवान स्वयं कृपा कर समुपस्थित सभी लोगों को अपनी ईश्वरीय सत्ता की दिव्य अनुभूति कराते हैं, उनकी मानसिक, आध्यात्मिक चेतना को उच्च भाव-भूमि में उठा कर अपनी दिव्य लीला को, दिव्य शक्ति को अभिव्यक्त कर ईश्वर-कृपा को उस समय के लिये सर्वजनबोधगम्य बना देते हैं। इसकी झलक हमें अवतार पुरुषों के जीवन में मिलती है।

भगवान श्रीरामचन्द्र जी जब १४ वर्ष वनवास की लोकमंगल यात्रा सम्पूर्ण कर अपनी प्रिय पावन जन्मभूमि अयोध्या में आते हैं, तब समस्त अयोध्यावासी अपने प्रिय नृपति श्रीराम को देखने के लिए दौड़ पड़ते हैं । भगवान श्रीराम, श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और वानर सेना के साथ पुष्पक विमान से उतरते हैं। समुपस्थित सभी प्रजा उनका दर्शन करना चाहती है, उनसे मिलना चाहती है, किन्तु श्रीराम एक और प्रजा अनेक है। बड़ी भीड़ है। कैसे होगी भेंट ! कैसे प्रजा के चित्त में शान्ति होगी ! कैसे राम-विरह की हृदय-ज्वाला शान्त होगी ! कैसे भक्तचित्त की तुष्टि होगी ! इसका उपाय प्रजा के पास नहीं था। क्योंकि प्रजा की सामर्थ्य सीमित है। तब अनन्त करुणामय भगवान ने अपनी अपार लीला प्रकट की और अपने चिन्मय दिव्य स्वरूप का विस्तार कर सबसे मिलकर सबको सन्तुष्ट किया। गोस्वामीजी लिखते हैं –

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी।
जनित बियोग बिपति सब नासी।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी।
किए सकल नर नारि बिसोकी।।
छन महिं सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना।। उत्तर ५/३-७

– किसी-किसी साधक को निराले ढंग से दर्शन भगवान ने दिए हैं, किन्तु उपरोक्त घटना में सामूहिक रूप से ईश्वरीय अनेक रूप की अभिव्यक्ति भगवान ने प्रथम बार दर्शायी है, इसे प्रभु की कल्पतरु लीला कही जा सकती है।

कल्पतरु क्या है? इसकी क्या विशेषता है? कहा जाता है कि कल्पतरु वृक्ष की छाया-तल में यदि कोई कामना करता है, तो उसकी वह कामना अवश्य पूर्ण होती है।

श्रीमद्‌भागवत में निगमकल्पतरु शब्द का उल्लेख मिलता है। स्वामी हरिहरानन्द 'श्रीकरपात्रीजी' महाराज अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भागवत सुधा' में निगमकल्पतरु की व्याख्या करते हुये कहते हैं – "निगमकल्पतरु पुरुषार्थ चतुष्टय प्रदायक और पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन भी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही दे सकता है। हाथों-हाथ भगवान को पकड़ा जा सकता है। ब्रह्मणात्मक अनादि अपौरूषेय वेद ही निगमकल्पतरु है। इसी निगमकल्पतरु का गलित फल है श्रीमद्भागवत। गलित अर्थात् परिपक्व। परिपक्व फल होने पर भी अमलात्मा महामुनीन्द्र भगवान शुकदेवजी के मुखारविन्द से प्रादुर्भूत है। इसलिये भागवत (१/१/३) में

कहा गया है –

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।

श्रीमद्भागवत रस ही है। इसका निरन्तर पान करना चाहिये। यह सामान्य शब्दात्मक नहीं है, यह तो शुद्ध रसात्मक ही है। जैसे निखिल-रसात्मकसारसर्वस्व साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द के रूप में प्रकट हो जाते हैं, परात्पर परब्रह्म प्रभु श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रकट हो जाते हैं, वैसे ही वह रस ही श्रीमद्भागवत के रूप में प्रकट होता है।'' इसमें हम निगमकल्पतरु को पुरुषार्थ-चतुष्टय प्रदायक पाते हैं।

भगवान जीवों के कल्याणार्थ अपनी लोकमंगल यात्रा करते हैं और कभी-कभी सर्वजनहिताय कल्पतरु बनते हैं। श्रीकृष्ण का मथुरा-गमन लोकहितार्थ यात्रा है, जिसमें वे अत्याचारी कंस और दानवों का वध करते हैं और कई राजाओं और प्रजा का उद्धार करते हैं। भगवान श्रीराम का वन-गमन लोकमंगल और कल्पतरु सदृश यात्रा है, जिसमें वे रावण और राक्षसों का वध करते हैं और ऋषि-मुनियों, शबरी जैसी तपस्विनी की दीर्घ काल से इच्छित-प्रतीक्षित आकांक्षा को पूर्ण करते हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की कामारपुकुर से कोलकाता यह लोकमंगल यात्रा है, जिसमें वे विश्वव्यापी सर्वधर्म-समन्वय सार्वजनीन शाश्वत धर्म का संदेश देते हैं और ऐसे धर्म के महान संदेशक स्वामी विवेकानन्द और भावी त्यागी संन्यास संघ का निर्माण करते हैं। अपने दीर्घ काल के दक्षिणेश्वर प्रवास में उन्होंने भक्तों पर विशेष कृपा की और अपने कई ईश्वरीय रूप के दर्शन और ईश्वरीय कृपा की अनुभूति कराई। इसी क्रम में वे काशीपुर उद्यान में अपने दिव्य स्वरूप को प्रकट करते हैं और कल्पतरु बनकर सामूहिक रूप से भक्तों पर कृपा करते हैं, जिसका वर्णन उनके अन्तरंग पार्षद स्वामी सारदानन्द जी ने अपने ग्रन्थ श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग में विस्तार से किया है। वे लिखते हैं – ''१८८६ ई. की पहली जनवरी थी। श्रीरामकृष्ण देव को उस दिन कुछ विशेष स्वस्थता अनुभव हुई। अत: उन्होंने बगीचे में टहलने की इच्छा प्रकट की। छुट्टी का दिन था। गृहस्थ भक्तगण दोपहर के बाद एक-एक करके अथवा समूह में काशीपुर बगीचे में आने लगे। तीसरे पहर लगभग तीन बजे जब श्रीरामकृष्ण देव बगीचे में टहलने के लिये अपने कक्ष से ऊपर से नीचे उतरे, तब तीस से भी अधिक लोग कमरे में या बगीचे के वृक्षों के नीचे बैठे आपस में वार्तालाप कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण देव को देखते ही सब लोगों ने उठकर प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण देव नीचे के हॉल में पश्चिम दरवाजे से बगीचे में आये और दक्षिण की ओर फाटक की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। भक्तगण कुछ दूरी रखकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। भवन और फाटक के बीच जब श्रीरामकृष्ण देव आये, तो उन्हें पश्चिम ओर वृक्षों के नीचे गिरीश, राम, अतुल आदि कुछ भक्तगण दिखायी पड़े। श्रीरामकृष्ण देव को देखते ही इन भक्तों ने वहीं से प्रणाम किया और प्रफुल्लित हो उनके समीप उपस्थित हुए। किसी के कुछ कहने के पूर्व ही श्रीरामकृष्ण देव ने गिरीशचन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा, 'गिरीश, तुम सबसे इतनी बातें (मेरे अवतार होने के बारे में) कहते रहते हो, तुमने (मेरे सम्बन्ध में) क्या देखा और क्या समझा है?' गिरीश तनिक भी विचलित न होकर उनके श्रीचरणों के सामने घुटने टेककर ऊर्ध्वमुख हो हाथ जोड़कर गद्गद स्वर से बोल उठे, 'व्यास-वाल्मीकि जिनकी महिमा नहीं गा सके, मेरे जैसा क्षुद्र व्यक्ति उनके सम्बन्ध में क्या कह सकता है !' गिरीश के हृदय का सरल विश्वास प्रत्येक शब्द में व्यक्त होने के कारण श्रीरामकृष्ण देव ने मुग्ध होकर समीपस्थ भक्तों से कहा, 'तुमलोगों से और क्या कहूँ, आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हें चैतन्य हो !' भक्तों के प्रति प्रेम और करुणा से आप्लुत हो वे इन बातों को कहते ही भावाविष्ट हो गये। स्वार्थगन्धरहित उनकी इस गम्भीर आशीर्वाणी ने प्रत्येक व्यक्ति में एक प्रबल स्फूर्ति देकर उसे आनन्द स्पन्दन से उद्वेलित कर डाला। वे देश-काल भूल गये, श्रीरामकृष्ण देव की व्याधि भूल गये, व्याधि के आराम न होने तक उनको स्पर्श न करने की अपनी प्रतिज्ञा भूल गये और साक्षात् अनुभव करने लगे, मानो उनके दुख से व्यथित होकर कोई एक अपूर्व देवता हृदय में अनन्त यातना और करुणा लिए हुए बिन्दुमात्र अपना प्रयोजन न रहने पर भी माता के समान स्नेहांचल में आश्रय प्रदान करने के लिए देवलोक से सामने अवतीर्ण होकर उन्हें प्रेम से पुकार रहे हैं। उन्हें प्रणाम करने और उनके श्रीचरणों की रज ग्रहण करने के लिए वे सभी व्याकुल हो उठे और जय-जयकार से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए एक-एक कर उन्हें प्रणाम करने लगे। इस प्रकार

प्रणाम करते समय श्रीरामकृष्ण देव के करुणासिन्धु ने आज वेलाभूमि का अतिक्रमण किया और इस प्रकार एक अदृष्टपूर्व घटना घटी। किसी-किसी भक्त के प्रति करुणा और प्रसन्नता से विभोर होकर दिव्यशक्ति के पवित्र स्पर्श से उसे कृतार्थ करते हमने इससे पहले भी दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव को प्राय: प्रतिदिन ही देखा था। परन्तु आज तो अर्धबाह्यदशा में वे समवेत प्रत्येक भक्त को उसी तरह स्पर्श करने लगे। उनकी इस अद्भुत कृपा से भक्तों में आनन्द की सीमा न रही। वे समझ गये कि आज से वे अपने देवत्व की बात केवल उन्हीं लोगों के निकट नहीं, बल्कि संसार में किसी के भी निकट अब छिपा नहीं रखेंगे और उन लोगों को अपनी-अपनी त्रुटि, अभाव और असमर्थता का बोध होने के कारण इस विषय में किंचिन्मात्र सन्देह नहीं रहा कि अब से पापी-तापी सभी समान रूप से उनके अभय श्रीचरणों में आश्रय प्राप्त करेंगे। अत: इस अपूर्व घटना से कोई-कोई कुछ भी कहने में असमर्थ हो जाने के कारण मन्त्रमुग्ध हो केवल उन्हें देखते ही रहे। कोई-कोई घर के भीतर के सभी लोगों को श्रीरामकृष्ण देव की कृपा प्राप्त कर धन्य होने के लिए चिल्लाकर बुलाने लगे और कोई-कोई फूल चुनकर मन्त्रोच्चारण करते हुए उनके शरीर पर चढ़ाकर उनकी पूजा करने लगे। कुछ क्षण ऐसा होने के बाद श्रीरामकृष्ण देव को शान्त होते देखकर भक्त लोग भी पूर्ववत् प्रकृतिस्थ हुए और ठाकुर भी आज का उद्यान-भ्रमण इसी तरह समाप्त करके भवन में प्रवेश कर अपने कक्ष में जा बैठे।''

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी अहैतुकी कृपा से भक्तों के समक्ष अपने दिव्य स्वरूप को प्रकट किया और सामूहिक रूप से भक्तों को दिव्यभावावेष्टित कर उनके जीवन को धन्य किया।

वास्तव में कल्प का अपभ्रंश कलप होता है। कलप से कलपना बनता है। कलपना का अर्थ वेदना होता है। जिस महान पुरुष की छत्रछाया में ईश्वरप्राप्ति की तड़पन हो, व्याकुलता हो, दिव्यभाव हो, तो वह सद्य: ईश्वरानुभूति कराने में सहायक होती है, ऐसा भगवान के कल्पतरु रूप और दिव्यस्वरूप के प्रकाश की किरण के आलोक में होता है। अत: हे प्राणी ! भगवान के लिए कलपो, व्याकुल होओ, तड़पो, तो भगवान तुम्हें तुरन्त अपने स्वरूप का दर्शन कराएँगे। ईश्वर के लिये तुम्हारी हार्दिक तीव्र व्याकुलता तुम्हें सद्य: ईश्वरानुभूति करा देगी। ○○○

'मैंने ईश्वर के दर्शन किए हैं'

स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के अष्टम संघाध्यक्ष थे। वे श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। वे १९२७ से १९५२ तक रामकृष्ण मिशन के राँची आश्रम के प्रमुख रहे। १९६२ में वे रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष हुए।

स्वामी लोकेश्वरानन्द जी ने उनकी महासमाधि के बाद उनके विषय में एक प्रसंग लिखा था। एकबार एक युवक स्वामी विशुद्धानन्द जी से मिलने आया। वह नास्तिक विचारों वाला था। उसने महाराज से पूछा, ''क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है?'' स्वामी विशुद्धानन्द जी ने उसका प्रश्न टालने के लिए कहा कि सभी देशों के सन्तों ने यह माना है कि ईश्वर हैं और उनके अस्तित्व के बारे में संशय करना ठीक नहीं है। किन्तु वह युवक उनके उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ और उसने पूछा, ''महाराज, मैं जानना चाहता हूँ कि क्या आपने स्वयं ईश्वर को देखा है?'' महाराज ने फिर उसे समझाने का प्रयत्न किया कि यदि कोई निष्ठापूर्वक भगवान से प्रार्थना करे और उसमें सच्ची व्याकुलता हो, तो उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।

स्वामी विशुद्धानन्द जी ने कइ बार उसका प्रश्न टालते हुए उसे समझाया, किन्तु वह युवक अपने प्रश्न पर अड़ा रहा। उसकी इस धृष्टता से वहाँ का वातावरण भी थोड़ा तनावपूर्ण हो गया और वहाँ उपस्थित लोग भी सोचने लगे कि महाराज अब क्या प्रतिक्रिया देंगे। किन्तु लोगों ने महाराज के मुख की ओर देखा कि क्रमश: उनके भाव में परिवर्तन हो रहा है। उनका मुख तेजोद्दीप्त हो गया। उन्होंने दृढ़ शब्दों में कहा, ''जैसे मैं अपने शरीर के अंगों को देख रहा हूँ, ऐसे ही प्रत्यक्ष मैंने ईश्वर के दर्शन किए हैं।'' महाराज के धीर, गम्भीर शब्दों को सुनकर उपस्थित लोगों में एक निस्तब्धता छा गई। वह युवक भी निश्शब्द वहाँ खड़ा रहा। महाराज इसके बाद कुछ न बोलकर अपने कमरे में चले गए और उस दिन बाहर नहीं निकले। भक्तगण भी इस अभूतपूर्व घटना के साक्षी होकर स्वयं को कृतार्थ समझने लगे। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१४)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रों से उद्धृत अंश)

मेरे अपने मन में आता है (और मेरे लिये यही सबसे बड़ी बात है), स्वामीजी में तपस्या का वेग इतना प्रबल है कि सम्भव है वे दुबारा कभी पश्चिमी दुनिया में न जायें, या शिक्षा न दें। यदि वे मौन व्रत धारण कर लें या सदा के लिये तपस्या करने चले जायँ – तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं होगी। परन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य हो सकता है कि उनके लिये यह भाव शक्ति का नहीं, अपितु आत्मतृप्ति का हेतु हो।[२] अत: मेरा अनुमान है कि इस भाव के बावजूद भी वे स्वयं को उठाकर विश्व के लिये ज्ञान तथा राहत के एक विराट् स्रोत बन जायेंगे। केवल उनके जीवन से बेपरवाही, सुख तथा संग्राम की आकांक्षा चली गयी है। अब कुछ भी बोलते समय या किसी प्रश्न का उत्तर देते समय उनकी आत्मा से ब्रह्माण्ड के ही समान विराटता तथा कोमलता प्रकट होती है; वे आहत और पीड़ा से आर्त होते हैं, तथापि प्रेम से परिपूर्ण रहते हैं। उनसे कुछ कहने का प्रयास करने पर भी मानो उस वाक्य के अतीत की महिमा नष्ट होती है। अद्भुत बात यह है कि उनके सामने अब जिस तरह की बातें अनुचित नहीं प्रतीत होतीं, वह है कोई चुटकुला या मजेदार कहानी, जो हम सभी में हँसी का संचार करे। बाकी समय उनके प्रत्येक क्षण की दिव्यता हमारे श्वाँस तक को अवरुद्ध कर देती है।

क्या तुमसे कुछ और कहना होगा? उनकी अन्तिम बात जो मैंने सुनी है, वह है ''स्वामीजी अब मर चुके'' और ''यातना में भी परम आनन्द है।'' किसी के विरुद्ध कोई कठोर वाक्य नहीं। ऐसी ही विराटता के भाव में ईसा को क्रूस पर चढ़ाया गया था।

फिर उन्होंने कहा कि उन्हें अपनी 'काली माता' कविता के प्रत्येक शब्द की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी पड़ी थी – और कल उनके आदेशानुसार उनके समक्ष इस कविता के प्रत्येक शब्द का उच्चारण करना पड़ा था।

वे बोलते जा रहे थे, और चूँकि 'माँ' के विषय में बोल रहे थे, अत: उनके शब्द विराट् प्रतीत हो रहे थे। अपने जाने के पूर्व वे माँ के सान्निध्य के स्पर्श का अनुभव कराकर गये। कल मैं उन्हें रुद्ध श्वांस के साथ ''ईश्वर'' कहे बिना नहीं रह सकी।

तुम और मैं – हम सभी एक ही ताल-छन्द के हिस्से हैं और वह छन्द हमारी कल्पना से भी बृहत् है – ईश्वर हमें उसके योग्य बना लें। वे गा रहे थे –

इस संसार-रूपी बाजार में
जगदम्बा पतंगें उड़ा रही हैं।
वे लाखों में से
दो-एक पतंगों की डोर काट देती हैं।

हम माँ के बच्चे हैं, धूल में खेलकूद रहे हैं, उड़ती हुई धूल से हमारी आँखें देखने में असमर्थ हो जाती हैं।

रविवार को वे हम लोगों की ओर उन्मुख होकर बोले, ''दार्शनिक रूपकों तथा प्राकृतिक रूपकों के द्वारा ईश्वर की मूर्तियों की व्याख्या नहीं की जा सकती। वे सच्ची भक्ति के द्वारा प्राप्त दिव्य दर्शनों से बनी हैं। वे सत्य हैं।''

कश्मीर में रहते समय स्वामीजी दिव्य अनुभूतियों के राज्य के अधीश्वर थे। अमरनाथ में शिव-दर्शन के बाद उन्हें क्षीरभवानी में जगदम्बा का दर्शन हुआ। विवेकानन्द का जीवन नित्य तथा लीला में मुक्त और आबद्ध है। उन्होंने अमरनाथ का श्वेत प्रलय और क्षीरभवानी का कृष्ण प्रलय – दोनों के ही स्वरूप का दर्शन किया था। निवेदिता ने बताया था, स्वामीजी ने 'तुषार स्तम्भ' के महान् कवित्व की बात कही थी, परन्तु इस विषय पर उन्होंने कोई कविता नहीं रची। वह कविता उन्होंने रची थी कृष्ण-भयंकरी के विषय में। वह 'काली द मदर' (काली माता) कविता की रचना एकमात्र

२ यहाँ पाठकों को स्वाभाविक रूप से ही श्रीरामकृष्ण द्वारा नरेन्द्रनाथ के तिरस्कार की बात स्मरण हो आयेगी – जब नरेन्द्र ने कहा था, समाधि में डूबे रहना ही उनकी चरम आकांक्षा है, तो श्रीरामकृष्ण बोले, मैंने सोचा था कि तू वटवृक्ष के समान सबका आश्रय बनेगा, उसकी जगह तू अपनी ही मुक्ति के लिये व्याकुल हो रहा है।

विवेकानन्द के लिये ही सम्भव थी, क्योंकि यह केवल एक काव्यकृति नहीं, अपितु मानवीय भाषा में अनाहत ध्वनि का जागरण है। प्रलय की इस महाध्वनि को इसके पूर्व केवल एक बार ही सुना गया था – ईश्वर-सखा (अर्जुन) के कण्ठ से, परन्तु वहाँ भी भयातुर कण्ठ का आर्तनाद है। श्रीकृष्ण का विश्वरूप देखकर अर्जुन ने कहा था –

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं-
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।
अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं-
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं-
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।।
नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं-
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।[३]

भगवान ने अर्जुन से कहा, 'कालोऽस्मि लोक-क्षयकृत्-प्रवृद्धो, लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः' – 'मैं काल हूँ। लोकों का क्षय करना ही मेरा स्वभाव है। मैं पुरातन हूँ। इन सभी लोकों का संहार करने के लिये ही उद्यत हूँ।' इस पर अर्जुन ने स्तुति करते हुए उनका प्रसन्न मुख देखने की इच्छा की थी। महाकाली ने जब अपने विवेकानन्द नामक सन्तान को अपना प्रलय-मूर्ति वाला रूप दिखाया, तो उन्होंने उनका प्रसन्न-मुख देखने की कामना नहीं की – बल्कि वे भयंकर के समीपवर्ती होकर उल्लसित हो उठे थे। इसी प्रसंग में विवेकानन्द ने अध्यात्म साहित्य में एक नवीन विधा प्रकट की।

३ गीता, अध्याय ११, श्लोक १९-२४

उस कविता का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

मृत्युरूपा काली

तारागण हो गये लुप्त हैं, नील गगन से,
मेघ सभी आच्छन्न हो गये हैं, मेघों से;
घूर्णिमान झंझा में भीषण पवन गरजता,
घोर अँधेरा स्पन्दन और प्रतिध्वनि करता।।

ऐसा लगता कोटि कोटि उन्मादी जन के,
प्राण निकल आये हों, मानो कारागृह से;
बड़े-बड़े वृक्षों को जड़ से ही उखाड़ती,
चली जा रही वह, सब कुछ पथ से बुहारती।।

काले नभ को छू लेने, आकर सागर भी,
उठा रहा उत्ताल तरंगें, गिरि-सम ऊँची;
परम घोर आतंक मृत्यु-छायाएँ अगणित,
विकट दामिनी चमक-चमककर करे प्रकाशित।

मृत्युरूपिणी काली, तुम धर रूप भयंकर,
बिखराती हो दुःख-व्याधियाँ, सारे जग पर,
हो आनन्दोन्मत्त नृत्य करती तुम अम्बे,
आओ मेरे जीवन में, आओ जगदम्बे।।

'विकराली' है नाम, मृत्युमय तेरी साँसें,
तेरा हर पदचाप, एक ब्रह्माण्ड विनाशे;
'काल' रूप में माँ, तू ही है सर्व-नाशिनी,
आओ मेरे जीवन में, आ जाओ जननी।।

परम साहसी है, दुःखों से प्रेम करे जो,
और मृत्यु से आलिंगन को है प्रस्तुत जो;
काल-नृत्य में भी जो अभय नाचता-गाता,
उसके ही जीवन में आतीं काली-माता।।

(क्रमशः)

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (३/६)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

कुशल शब्द को लेकर, कबीर ने भी व्यंग्य भरा दोहा कहा – कोई व्यक्ति मिला उनसे, और पूछ दिया, महाराज, कहिए कुशल से तो हैं? वे थोड़ा अक्खड़ी स्वभाव के थे। उन्होंने कहा, व्यर्थ का प्रश्न सुनते-सुनते हमको लगता है कि इस व्यर्थ के शब्दों का आदान-प्रदान तुम लोग क्यों करते हो? क्यों पूछ रहे हो कुशल? महाराज, कोई दुर्घटना हो गई है क्या? बोले, दुर्घटना?

कुसल कुसल ही के करत जग में बचा न कोय।
माया मुई न मन मुआ कुशल कहाँ ते होय।।

जब तक यह सब बना हुआ है, तब तक काहे का कुशल? इसी बात को विभीषणजी कहते हैं –

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना।। ५/४६/१

प्रभु यह जो अन्त:करण है, हृदय है, आप जब तक इसमें नहीं रहते, तब तक ये दुर्गुण रहते हैं। प्रभु ने मुस्कराकर कहा – शास्त्र तो यह कहते हैं कि जीव के हृदय में मैं सर्वदा रहता हूँ, तब तुम ऐसा क्यों कहते हो? बोले, हाँ रहते होंगे, लेकिन जैसे रहना चाहिये, वैसा नहीं रहते। कैसे रहना चाहिये? बोले –

जब लगि उर न बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा।। ५/४६/२

बिना धनुष-बाण वाला ईश्वर होगा, जिससे किसी को डर नहीं लगता, वही सबके हृदय में बैठा हुआ है और काम, क्रोध, लोभ भी वहीं बैठे हुए हैं। जरा धनुष-बाण लेकर तो बैठिए। बड़ी सांकेतिक भाषा है। हमें केवल द्रष्टा ईश्वर नहीं चाहिये। वेदान्त का ब्रह्म द्रष्टा है, वह सक्रिय होकर हस्तक्षेप नहीं करता। भक्तों को भगवान के हाथ में धनुष-बाण पहनाए बिना संतोष नहीं होता। धनुष-बाण का अभिप्राय यह है कि प्रभु, आप सक्रिय होकर इन दुर्गण-दुर्विचारों का विनाश करें। इसका तात्पर्य है कि साधन करते-करते जब वह प्रार्थना करता है, कि प्रभु, हम केवल अपने पुरुषार्थ से दुर्गणों का विनाश नहीं कर सकते, आप ही कृपा करके इन दुर्गुणों का विनाश करने की दया करें। इस साधना और कृपा के सामंजस्य से उन दुर्गुणों का विनाश होने के बाद हमारे हृदय में ईश्वर निवास करता है।

इसलिये भगवान राम अयोध्यावासियों से कहते हैं, मित्रो, यह शरीर साधना के लिये मिला है। अगर भोग के लिये मिला होता, तो देव-शरीर मिला होता, जिसमें भोगों से रोग नहीं होता, भोगों से वृद्धावस्था नहीं आती। किन्तु यह शरीर उन्होंने भोग के स्थान पर साधना के लिये दिया है। साथ-साथ उन्होंने यह भी कह दिया, कई लोग यह भी सोचते हैं कि साधना करते-करते स्वर्ग पहुँच जायँ, किन्तु वे भी बुद्धिमान नहीं हैं। तब वहाँ पर भगवान शंकर माँगने वाले से कहते हैं, थोड़ा मत माँगना। इसकी व्याख्या भगवान ने की । बोले, जो लोग शरीर से साधना भी करें और उन साधनों के बदले में स्वर्ग माँग लें, तो यह बड़ी छोटी वस्तु हो गयी। संसार के भोगों की तो बात क्या है 'स्वर्गउ स्वल्प' स्वर्ग भी वस्तुत: थोड़ा ही है। थोड़ा और बहुत की परिभाषा क्या है? बोले, जो सदा रहे, वह बहुत है और जो कभी समाप्त हो जाय, वह थोड़ा ही है। स्वर्ग में बेचारे जितना भी पुण्य लेकर जायँ, जहाँ पुण्य समाप्त हुआ, नीचे ढकेले जाने वाले हैं। भगवान कहते हैं, कौन नासमझ होगा, जो ऐसे स्थान में जायेगा। वृद्धावस्था में कम से कम एक संकेत तो मिलता है कि सावधान हो जाइए। पर स्वर्ग के देवताओं को तो संकेत ही नहीं मिलता। निरन्तर भोगों में डूबे हुए हैं। वृद्धावस्था आती नहीं, भोगों को भोगते-भोगते, बस पुण्य की पूंजी समाप्त हुई, तत्काल संसार में किस योनि या नर्क में ढकेल दिये जायेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं। इसलिये भगवान राम कहते हैं –

स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।

भगवान राम कहते हैं, याद रखो, जो सुख अन्त में दुख देनेवाला होता है, वह सुख नहीं हो सकता है। विषयों में सुख के पश्चात् दुख है और स्वर्ग में भी सुख के बाद एक महानतम दुख है, इसलिये तुम्हें स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। जब महाराज दिलीप ने शास्त्रों में सुना कि सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले को इन्द्र पद प्राप्त होता है, तो उन्होंने संकल्प लिया और निन्यानबे अश्वमेध यज्ञ कर डाले। जब वे सौवा अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, तो घोड़ा चोरी हो गया। ढूँढ़ने पर कहीं मिला नहीं। घोड़ा पकड़ने वाला राजा दिखाई नहीं पड़ा। वशिष्ठ ने ध्यान करके बताया कि इन्द्र घोड़ा चुराकर स्वर्ग ले गया है। महाराज दिलीप के पुत्र रघु बड़े प्रतापी थे। उन्होंने कहा कि अभी मैं जाकर इन्द्र को परास्त कर घोड़ा ले आता हूँ। पर दिलीप ने सत्संग किया था। सत्संग से बड़ा लाभ होता है। सत्संग में सुना हुआ सत्य व्यक्ति के जीवन में भले ही तत्काल क्रियान्वित न हो, पर वह कभी-न-कभी याद आता है। इसलिये गोस्वामीजी ने बहुत बढ़िया दृष्टान्त दिया। किसी ने गोस्वामीजी से कहा, महाराज, इतने भक्ति-भाव की क्या आवश्यकता है? इसके बिना जीवन में काम नहीं चलता है क्या? तो गोस्वामीजी ने कहा –

लरकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ।

बच्चे को अगर तैरना सिखा दीजिए, तो यह थोड़े ही है कि चौबीसों घंटे तैरता ही रहे नदी में? चलेगा तो सड़क पर ही, लेकिन जिस दिन नदी में डूबने का डर होगा, उस दिन उसकी तैराकी काम आयेगी। इसलिये सत्संग करने का अभिप्राय यह है कि तत्काल नहीं, तो जब डूबने लगिएगा तब आप को याद आ जायगी कि पार होने की एक कला है। इसीलिये महाराज दिलीप को सत्संग की बात याद आ गई। उन्होंने कहा, मुझे यज्ञ नहीं करना है। किसी ने कहा, महाराज, निन्यानबे पूरा हो चुका, अब आप नहीं क्यों कर रहे हैं? उन्होंने कहा, अरे, मैं इन्द्र बनने के लिये, स्वर्ग का राजा बनने के लिये सौ अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। किन्तु सोचो, सौ अश्वमेघ यज्ञ करके इन्द्र बननेवाले की जब चोरी करने की आदत नहीं गई, तो ऐसा इन्द्र बनकर मैं क्या करूँगा? मैं तो यहाँ चोरों को दण्ड देते रहता हूँ और स्वर्ग का राजा स्वयं चोरी करता है। अत: मुझे यह यज्ञ नहीं करना। संकेत यही है कि जहाँ पर व्यक्ति समझ गया, वह यही अनुभव करता है और सावधान हो जाता है। भगवान ने यही कहा –

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।। ७/४२/८

जो लोग कहते हैं कि सब ईश्वर कराता है, भगवान ने कह दिया कि बिल्कुल नहीं –

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।। ४/४३/७,८
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।। ४/४४

लोग कहते हैं कि आत्महत्या बड़ा पाप है। ऐसा मानते हैं कि विष खाकर मरना ही आत्महत्या है। भगवान कहते हैं, ये संसार के जीव, जो विषय का सेवन कर रहे हैं, वे तो आत्मघाती ही हैं। हाँ, वह आत्महत्या तुरन्त नहीं दिखाई दे रही है । इसीलिये भगवान शंकर माँगने वाले के सामने आकर कहते हैं, थोड़ा मत माँगना। उसका उद्देश्य यही होता है कि एक मात्र ईश्वर को छोड़कर अगर तुमने मुझसे कुछ माँगा, तो मुझे बुलाने का क्या अर्थ है? अगर उन वस्तुओं को मैं बहुमूल्य मानता, तो मैं स्वयं उसे धारण करके तुम्हारे सामने क्यों न आता? स्वयं मैंने उन वस्तुओं को बहुमूल्य नहीं माना और तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। भगवान शंकर यह प्रेरणा देते हैं।

पर समस्या यह है कि दैत्य लोग, देवताओं को शक्तिशाली तो मानते हैं, पर बुद्धिमान नहीं मानते। वे यह मानते है कि हाँ इनमें देने की शक्ति है, पर बुद्धिमान नहीं होते। बुद्धिमान तो इनसे अधिक हम ही हैं। जब दोनों आकर खड़े हो गये, कितना सुन्दर सुयोग था, कैसा सुन्दर अंक जुड़ा हुआ था, एक ओर शंकर जी पंचानन और दूसरी ओर ब्रह्माजी चतुरानन और दोनों का योग कीजिए तो नौ। कितना सुन्दर संकेत था। नौ का अंक संकेत कर रहा था, दशमुख हो, पर नौ से तुम धन्यता प्राप्त करोगे। यही सूत्र है, दशमुख सामने था और नौ मुख उसके सामने खड़े थे। दशरथ भी दस थे, पर अन्तर यही था कि उनको दशरथ होने पर भी अभाव का अनुभव हुआ। धन्य कब हुए? जब रामनौमी आई और राम को पाए। इसका अभिप्राय है कि

हम दस अंगों वाला होते हुए भी जब तक नवधा भक्ति के द्वारा ईश्वर को नहीं पा लेंगे, तब तक पूर्णता नहीं आयेगी। रावण ने तो दोनों तरह से गणित कर लिया। पाँच अंक वाले शंकरजी हैं, तो उनसे दूनी बुद्धि है मुझमें। अगर चार अंक वाले ब्रह्मा और ये दोनों मिल भी जायँ, तो भी ये हमसे क्या आगे बढ़ेंगे? ये नौ फिर भी मुझसे कम। मैं तो दस हूँ। जब भगवान शंकर ने उससे पूछा, क्या चाहते हो? बोला –

हम काहू के मरहिं न मारें।

बानर मनुज जाति दुइ बारें।। १/१७६/४

हम बन्दर और मनुष्यों को छोड़कर किसी के मारने से न मरें। जब शंकरजी ने कुम्भकर्ण से जाकर पूछा, तो उसने माँगा –

मागेसि नीद मास षट केरी। १/१७६/८

कुम्भकर्ण ने कहा, हम छः महीने सोवें। एक ने लड़ाई के लिये जागने का वर माँगा और एक ने माँगा कि छः महीने सोवें। जब एक दिन जगे, तो छह महीने का भोजन एक ही दिन में खा जाय। जब कुम्भकर्ण जागता था, तो –

जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा। १/१७९/४

कुम्भकर्ण के जागने से तीनों लोगों में त्राहि त्राहि मच जाती थी। सबसे अन्त में शंकरजी विभीषण के पास गये। विभीषण तो धर्मरुचि पहले से ही थे। उन्होंने वर माँगने को कहा –

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।

तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।। १/१७७

विभीषण ने कहा, भगवन्, मुझे भगवान के चरणों में भक्ति दीजिये, अनुराग, प्रेम दीजिये। बड़े प्रसन्न हो गये शंकरजी। वही भगवान हैं, पर एक ने भगवान के चरणों में भक्ति माँगी तो एक ने अमरता माँगी। कैसा दुर्भाग्य है ! भगवान शंकर ने यह नहीं कहा कि रावण ने अमरता माँगी, उन्होंने यही कहा –

रावन मरन मनुज कर जाचा। १/४८/१

रावण ने मुझसे मृत्यु माँगी। मृत्यु माँगी? हाँ, भगवान शंकर ने कहा, पार्वती, जब उसने यह कहा कि मेरी मृत्यु वानर और मनुष्य को छोड़कर और किसी के हाथ से न हो, तो इसका अर्थ है कि उसने मनुष्य के हाथ से मृत्यु होने का मार्ग तो खोल ही दिया। एक ने नींद माँगी। भला यह भी कोई माँगने की वस्तु है? मृत्यु तो बिना माँगे ही मिलती है और नींद का तो कहना ही क्या? जब वह कथा में भी पीछा नहीं छोड़ती, तो वह भी तो बिना माँगे मिली हुई है। माँगने की वस्तु तो भक्ति ही है। विभीषण ने भक्ति तो माँगी, पर माँगने के बाद भी शरणागति में समय लगा। वे लंका में रहते थे, भक्ति करते थे, भगवान की पूजा करते थे, स्वयं वे बुरा आचरण नहीं करते थे, पर वे रावण से अपने आपको अलग नहीं कर पाए। और वे अलग तब कर पाते हैं, शरणागति तो बाद में तब होती है, जब संत का आगमन हुआ, हनुमान जी जैसे महान विरागी संत आए। रामायण में लिखा हुआ है, सोने और जागने का लक्षण क्या है?

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। २/९२/२

और जागने का क्या है? बोले –

जानिअ तबहिं जीव जग जागा।

जब सब बिषय बिलास बिरागा।। २/९२/४

जब वैराग्य आ गया, तो समझ लीजिए कि जाग गये। हनुमानजी थे –

प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय । (वि.प. ५८/८)

उस प्रकृति के लंकापुरी में, जहाँ पर मोह का राज्य है, जब हनुमानजी ने आकर द्वार खटखटाया, तो विभीषण जाग गये, सचमुच जाग गये। उसके बाद ही तो शरणागति की भूमिका बनी, पर जागने के बाद भी दो-चार झोंके आए, तब आगे शरणागति हुई। इसकी चर्चा कल होगी।

बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय।। **(क्रमशः)**

वेदान्त कहता है कि दुर्बलता ही संसार के सारे दुखों का कारण है, इसीसे सारे दुख-कष्ट पैदा होते हैं। हम दुर्बल हैं, इसीलिए इतना दुख भोगते हैं। हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इसी प्रकार के अनेकानेक कुकर्म करते हैं। दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं। जहाँ हमें दुर्बल बनाने वाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है, न दुख। हम लोग केवल भ्रान्तिवश ही दुख भोगते हैं। इस भ्रान्ति को दूर कर दो और तत्काल सारे दुख चले जाएँगे।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीतोतापुरीजी के मठ की तीर्थयात्रा

स्वामी आत्मश्रद्धानन्द

आचार्य, ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र, रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ

(अनुवादक - अजय चहल, आई.आई.टी. चेन्नई)

श्रीतोतापुरीजी श्रीरामकृष्ण के वेदान्त-गुरु थे। वे अपनी तीर्थयात्रा के दौरान दक्षिणेश्वर आये थे। श्रीरामकृष्ण से उनकी भेंट काली मन्दिर की ओर आनेवाले गंगा-तट पर हुई थी। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को वेदान्त-साधना का योग्य अधिकारी समझा तथा वहाँ महीनों निवास करते हुए, उन्हें वेदान्त साधना की शिक्षा दी।

नागा-परम्परा के परिव्राजक संन्यासी तोतापुरीजी ने श्रीरामकृष्ण को वैदिक संन्यास में दीक्षित किया और उनके मार्गदर्शन में श्रीरामकृष्ण ने निर्विकल्प समाधि की उच्चतम अवस्था को प्राप्त किया। श्रीरामकृष्ण ने भी अपनी अनुपम सादगी और विशुद्धता से तोतापुरीजी को भक्ति और सगुण ब्रह्म की सूक्ष्म वास्तविकताओं से अवगत कराया। श्रीरामकृष्ण के दिव्य जीवन की इस कालावधि का चिन्तन करने से हमारा मन एक उच्चतर भूमि पर आरूढ़ हो जाता है ।

श्रीतोतापुरीजी के मठ की ओर

तोतापुरीजी एक अद्‌भुत आचार्य और महान आध्यात्मिक विभूतियों में एक थे । उनके बारे में यह जानने की उत्सुकता रहेगी कि उनका जन्म कहाँ हुआ, वे कहाँ पले-बढ़े, कब और कैसे संन्यासी बनें, उन्होंने साधना कहाँ की और वे कब तक जीवित रहे आदि। यद्यपि पर्याप्त दस्तावेजों और प्रमाणों के अभाव में तोतापुरीजी के बारे में बहुत अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, तथापि स्वामी सारदानन्द लिखित श्रीरामकृष्ण की जीवनी 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु वे तथ्य भी पूर्ण विस्तृत जीवनी हेतु अपर्याप्त हैं।

तोतापुरीजी के बारे में कुछ रोचक जानकारियाँ मिलती हैं। जैसे उनका कद लम्बा था, देह सुदृढ़ थी, वे हाथों में एक पीतल का लोटा और चिमटा रखते थे और तन पर कोई वस्त्र नहीं रखते थे, इसलिए श्रीरामकृष्ण उन्हें नंगटा या नंगा बाबा कहते थे। श्रीरामकृष्ण से मिलने से पहले और बाद के उनके जीवन के बारे में बहुत कम ज्ञात है। उनके बारे में लीलाप्रसंग में वर्णन है –

सम्भवत: वे हिन्दू संन्यासियों के नागा संप्रदाय से थे। बाल्यकाल में ही गृह त्याकर अपने गुरु के साथ रहने लगे और लम्बे समय तक ध्यान करके आध्यात्मिक अनुभव के श्रेष्ठतम सोपान निर्विकल्प समाधि को प्राप्त किया। दक्षिणेश्वर में उनके ११ माह के प्रवास से सम्बन्धित कुछ सुन्दर प्रसंगों का वर्णन श्रीरामकृष्ण के द्वारा किया गया है।

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग में लदाना मठ के बारे में लिखा गया है – उनके मठ में ७०० नागा संन्यासी रहते थे। जो लोग ध्यान सीखते थे, वे गद्दी का प्रयोग करते, क्योंकि कठोर आसन पर बैठने से उनके पैरों में दर्द हो सकता था और उनका अनभ्यस्त मन ईश्वर के बदले उनके शरीर के बारे में ही चिंतन करने लगता। तत्पश्चात् जैसे ही उनका ध्यान गहरा होने लगता, उनके बैठने का आसन भी कठोर होने लगता। अन्त में उन्हें ध्यानाभ्यास मात्र चर्मासन या धरती पर करना होता था। प्रत्येक क्रिया जैसे, भोजन के सम्बन्ध में उन्हें बहुत कड़े नियमों का पालन करवाया जाता था। वस्त्रों के सम्बन्ध में, शिष्यों को धीरे-धीरे नग्न रहने का अभ्यास करवाया जाता था। मनुष्य के आठ बन्धन, जैसे लज्जा, घृणा, भय एवं जन्म, कुल, परम्परा और आडम्बर से उपजा अहंभाव इत्यादि को एक-एक कर छोड़ना सिखाया जाता था। तदनन्तर जब वे मन की गहन एकाग्रता विकसित कर लेते, तो उन्हें पहले दूसरे साधुओं के संग और उसके बाद अकेले एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थस्थानों का दर्शन कर वापस आना होता था। नागा साधुओं के ऐसे ही नियम होते थे।

नागा साधुओं में जो ठीक-ठीक परमहंस की अवस्था को प्राप्त कर लेते थे, उन्हें रिक्त होने पर संप्रदाय के महंत की गद्दी के लिए चुन लिया जाता था। ... महंत की गद्दी पर उसी व्यक्ति को बैठाया जाता था, जिसके मन से धन-सम्पत्ति का आकर्षण समाप्त हो चुका होता था। उसे ही सम्पूर्ण धन और मूल्यवान सम्पत्ति का दायित्व दिया जाता था।''

इन सब विवरणों के बाद भी एक प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान में तोतापुरीजी से सम्बधित कुछ भी उपलब्ध नहीं है? क्या स्वामी सारदानन्द ने तोतापुरीजी का मठ पंजाब में लुधियाना के पास नहीं बताया था? यहीं से हमने इस विषय में पुन: अनुसन्धान आरम्भ किया। हमें ज्ञात हुआ कि

वास्तव में वह पंजाब का 'लुधियाना' नहीं, बल्कि वर्तमान हरियाणा का 'लदाना' है।

रामकृष्ण मठ के संन्यासी स्वामी अलोकानन्द का अद्वैत आश्रम, मायावती की अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के नवम्बर १९७४ अंक में प्रकशित लेख 'श्रीमत् तोतापुरी के गुरु का मठ', से भी यही ज्ञात होता है। इस लेख में लदाना सम्बन्धित बहुत कम, परन्तु महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध हैं और इस स्थान का बड़ा मनोरम वर्णन किया गया है। इसमें लेखक की लदाना यात्रा का वर्णन है।

उड़िया भाषा में तोतापुरीजी के बारे में एक पुस्तक है, जिसमें उनका मठ उड़ीसा के पुरी में बताया गया है। इस पुस्तक में भी उनके जीवन के बारे में जानकारी मिलती है।

वैद्य वनमाली दत्त शर्मा की पुस्तक 'हरियाणा की वेदान्त परम्परा और बाबा तोतापुरी' में लदाना का विस्तृत विवरण और तोतापुरीजी से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध है । यह १९८६ में कुरुक्षेत्र से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में लदाना और वहाँ स्थित मठ के बारे में अधिकतर ज्ञात और कुछ नए, किन्तु यत्र-तत्र बिखरे तथ्यों का एकत्र उल्लेख है। यह पुस्तक अब अप्रकाशित है।

हमारी लदाना यात्रा

सितम्बर, २०१५ में हमने लदाना की यात्रा की। यह हरियाणा प्रान्त के एक प्राचीन और महत्वपूर्ण जिला कैथल के निकट है।

कैथल शहर से लदाना जाते समय मार्ग में अनेक गाँव आते हैं । इनमें से एक गाँव का नाम 'मानस' है, जिसका उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है। यह क्षेत्र महाभारत सम्बन्धी अनेक अप्रसिद्ध तीर्थ-स्थलों से पूर्ण है।

सामान्य यातायात गति से दिल्ली या चंडीगढ़ से तीन घंटे में लदाना पहुँच सकते हैं, क्योंकि ये दोनों से लगभग समान दूरी पर है। लदाना गाँव की जनसंख्या ५००० से अधिक है। लोकमत के अनुसार यहाँ सामान लादा जाता था, जिससे इसका नाम लदाना पड़ा।

लदाना गाँव उस विशाल क्षेत्र का भाग है, जहाँ महाभारत का महायुद्ध हुआ था । महाभारत में वर्णित है कि युद्धक्षेत्र के चारों कोनों पर पहरेदारी करने के लिये यक्ष मंदिर थे । इनमें से एक यक्ष मंदिर (अरन्तनुक बेहर यक्ष) लदाना के पास ही है। बेहर यक्ष का मंदिर सिक्ख पंथ के नौवें गुरु तेग बहादुर सिंह जी से आशीषप्राप्त एक प्रसिद्ध गुरुद्वारे के समीप है। बेहर साहिब गुरुद्वारे द्वारा गुरु तेग बहादुर के नाम से एक बड़े स्कूल का संचालन भी किया जाता है। प्रसंगत: हमें यह ज्ञात हुआ कि यह स्कूल हरियाणा और पंजाब की राजकीय सीमारेखा पर स्थित है। लीलाप्रसंग में वर्णित लदाना का मठ दो स्थानों पर है – एक लदाना गाँव के अन्दर और दूसरा गाँव के बाहर। गाँव के अन्दर वाला मठ अब वहाँ नहीं है । इसके स्थान पर वहाँ हरियाणा का सरकारी स्कूल है। स्वामी अलोकानन्द के लेख में मुख्यत: इसी मठ का उल्लेख है।

गाँव के बाहर वाला मठ अभी भी वहीं है और एक सक्रिय एवं जीवन्त परम्परा के रूप में है। इस क्षेत्र में प्रसिद्ध 'सिद्ध बाबा राजपुरी का डेरा' नामक मठ में तोतापुरीजी रहे थे और यहीं उनका देहत्याग हुआ था । (यह एक समाधि मंदिर पर लिखा हुआ है)।

जैसे ही हम लदाना गाँव पहुँचे, तो बायीं ओर आनेवाले एक बड़े तालाब को पार करते ही मठ की ७० एकड़ भूमि के प्रारम्भ में लाल ईटों का एक अधूरा प्रवेश द्वार दिखाई दिया। गाँव के कुछ लोगों से हमारी भेंट हुई। । वे लोग चारपाईयों पर बैठे थे और उनमें से कुछ हुक्का पी रहे थे। उन्होंने शिष्टाचारपूर्वक हमें पानी और चाय के लिये पूछा, जिसे हमने स्वीकार किया। एक स्थानीय युवक जसबीर और उसके साथियों ने हमें आस-पास के क्षेत्र में घुमाया। जसबीर का यहाँ के इतिहास और क्षेत्र का ज्ञान सचमुच उल्लेखनीय एवं सहयोगी रहा।

बाबा राजपुरी जी का मन्दिर

उसके बाद हम डेरे के पास पहुँचे। हरियाणवी और पंजाबी में मठ को डेरा भी कहा जाता है। मठ के खेतों में अन्य फसलों के साथ गन्ने की फसल भी दिखाई दे रही थी। लगभग ३०० मीटर के एक ग्रामीण परिवेश में दोनों ओर से खुली सड़क से मठ परिसर में पहुँचा जा सकता है। केन्द्र में एक बड़े से मंदिर के चारों ओर कुछ छोटे-छोटे मंदिर, रसोईघर, कुछ निवास-कक्ष और एक खुला आँगन था। मठ

के पीछे बहुत सारी भैंसें दिखाई पड़ रही थीं।

जैसे ही हम मठ में प्रवेश करते हैं, तो अनेक मड़ियाँ दिखाई देती हैं। हरियाणवी में गुम्बदाकार छोटे-छोटे पूजनीय स्थलों को मड़ी कहते हैं। पहली बार देखनेवाले को ये गुम्बद मस्जिद जैसे प्रतीत हो सकते हैं। ऐसा यहाँ पर दीर्घ काल तक रहे मुस्लिम शासन के कारण हो सकता है। हरियाणा के अधिकतर मन्दिर और उनका परिवेश लगभग ऐसा ही होता है।

मुख्य मंदिर धूनी है, जिसमें नागा साधुओं द्वारा तैयार की गई पवित्र आग और उसकी राख रहती है। इस धूनी के सामने ही डेरे के संस्थापक बाबा राजपुरी जी की धातु की प्रतिमा एक खांचे में स्थापित है। धूनी को गायों के उपलों से सदा प्रज्वलित रखा जाता है। अनेकों छोटे-बड़े धातु के त्रिशूल इस पवित्र धूनी में यहाँ-वहाँ गड़े हुए थे। साधु और भगत धूनी को प्रणाम करते हैं और सुगन्धित धूप, अगरबत्ती के साथ कभी-कभी मिट्टी के दीये भी जलाते हैं। धूनी की राख बहुत ही पवित्र मानी जाती है और प्रसाद के रूप में भक्तों में वितरित भी की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मंदिर किसी चट्टान के टीले पर बनाया गया है या ऐसी डिजाईन की गई है। वहाँ बड़ी-बड़ी घुमावदार मार्बल की सीढ़ियों से जाना पड़ता है। सीढ़ियों से ऊपर पहुँचने पर एक गोलाकार बरामदा और केन्द्र में धूनी का मंदिर दिखाई देता है।

हमें बाबा राजपुरीजी से लेकर तोतापुरीजी तक और उनके बाद के भी मठ के सभी महन्तों के चित्र दिखाई दिये। उन्हें छोटे-छोटे खांचों में नाम-पट्टी के साथ रखा गया था। गोलाकार बरामदे के विभिन्न कोनों से मठ का विस्तृत दृश्य दिखाई पड़ता है।

मुख्य मंदिर से आगे तोतापुरीजी का एक मंदिर है। ऐसा ही मंदिर उड़ीसा के पुरी मठ में है, जहाँ तोतापुरीजी का स्वर्गवास हुआ माना जाता है। क्योंकि इस सम्बन्ध में तथ्यों की पुष्टि करना कठिन है, इसीलिए हम इस विषय को भावी शोध हेतु छोड़ देते हैं। मँझली ऊँचाई वाले लाल रंग के मंदिर में एक शिवलिंग स्थापित है, जहाँ प्रतिदिन पूजा-पाठ होता है।

जब हम डेरे में घूम रहे थे, तभी दोपहर २ बजे के आस-पास, एक युवा साधु ने कुछ पानी और चढ़ावे के साथ आकर तोतापुरीजी के मंदिर में एवं छोटे-छोटे गुम्बदों जैसी संरचनाओं के सामने विधिवत् प्रार्थना की। डेरे में ४ या ५ साधु थे। हमें बाद में पता चला कि ये गुम्बदाकार संरचनाएँ डेरे के पूर्व महन्तों की समाधियाँ हैं। इस क्षेत्र में साधुओं को धरती में समाधि देने की ही परम्परा है। उसने सभी समाधियों पर जल का छिड़काव किया। वहाँ पर अन्य सिद्धों और महापुरुषों के भी कुछ मन्दिर जैसी संरचनाएँ थीं।

सबसे महत्त्वपूर्ण माँ हिंगलाज देवी का मंदिर था। देवी का मूल मंदिर पाकिस्तान के कराची से लगभग २५० कि.मी. दूर बलूचिस्तान के हिंगलाज नामक स्थान पर है। ऐसी मान्यता है कि बाबा राजपुरीजी देवी के भक्त थे और वे हिंगलाज के मन्दिर में गए थे। लदाना एवं आसपास के क्षेत्रों में यह लोक-मान्यता है कि डेरे के वार्षिक मेले के समय माता हिंगलाज देवी यहाँ आती हैं और भक्तों को आशीष देती हैं।

यहाँ एक बड़ा-सा पेड़ है, जो झाड़ी की तरह फैला हुआ है और इसके चारों ओर चबूतरा भी बना हुआ है। लोक-मान्यता है कि बाबा राजपुरीजी इस पेड़

बाबा लदाना डेरे के मन्दिरों का दृश्य

के नीचे तपस्या करते थे। यह मुख्य मंदिर के ठीक सामने और तोतापुरीजी के मंदिर के समीप है। इस वृक्ष को भक्त लोग बहुत पवित्र मानते हैं और इसकी टहनियों पर मन्नत के धागे भी बाँधते हैं।

हमें जसबीर से पता चला कि डेरे की परम्परानुसार प्रतिवर्ष अक्टूबर या नवम्बर में शरद नवरात्रि में यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें हजारों भक्त आते हैं। दुर्गाष्टमी से दो दिन पहले डेरे में साधुओं और पुजारियों द्वारा पूजा-हवन-पाठ किया जाता है। निकट और दूरस्थ गाँव से आगत भक्त बाबा राजपुरी एवं डेरे के अन्य साधुओं की उपासना कर धूनी के समीप मिट्टी के दीये जलाते हैं। पूरे डेरे को बिजली की लड़ियों से रौशन किया जाता है, पूरा क्षेत्र त्यौहार के रंग में डूब जाता है।

मेले के समय लोग डेरे के तालाब में स्नान करते हैं और अत्यधिक मात्रा में भक्तों द्वारा लाया गया दूध प्रसाद स्वरूप बाँटा जाता है। भक्तों द्वारा लगाये गए कई नि:शुल्क प्याऊ से प्यासे मेलावासियों को पानी पिलाया जाता है। पटरी पर लगी अनेकों दूकानों में यात्रियों को घरेलू वस्तुएँ, मिठाईयाँ और खिलौने भी खरीदने के लिए सजे मिलते हैं। मेले में कुश्ती कराई जाती है, जिसमें बहुत-से पहलवान दांव-पेंच लगाते हैं और दर्शकों की भारी भीड़ उनका उत्साहवर्धन करती है।
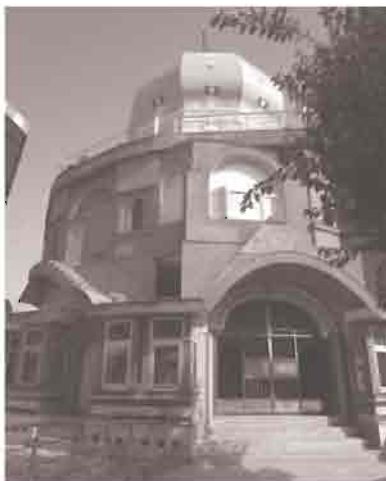
धूनी मन्दिर का प्रवेश द्वार

हम डेरे के आँगन में बनी रसोई में भी गए। डेरे में मात्र ४-५ साधु ही थे, किन्तु डेरे के खेतों में अनेक कर्मचारी थे और वे सभी दोपहर का भोजन डेरे में ही करते हैं।

आँगन के समीप एक बड़े कमरे में दो नगाड़े रखे गए थे, जो डेरे में होनेवाली पूजा के समय बजाये जाते हैं। वहाँ एक अस्थाई वेदी पर बाबा राजपुरीजी का चित्र भी रखा था। वहाँ पर हमने बहुत सारा अन्न का भण्डार भी देखा।

बाद में हम डेरे के वर्तमान महन्त के निवास पर भी गए। यह एक मंजिला ईंट और सीमेंट का पक्का भवन हाल ही का बनाया हुआ था। महन्तजी ने हमें आसन दिया और हमारे लिए चाय भी बनवाई। उनका नाम महन्त दूधपुरीजी है। उन्होंने २०११ में ही अपने गुरु ओमपुरीजी से ये गद्दी प्राप्त की थी। उन्होंने हमारे साथ कुछ देर डेरे के बारे में बातचीत की और बताया कि वास्तव में अँग्रेजी शासनकाल में डेरे के पास बहुत अधिक जमीन थी, पर उसे अंग्रेजी सरकार ने ले ली। उन्होंने इसके कागजी सबूतों के न होने पर दुख प्रकट किया। क्योंकि उन्हें ठीक से संरक्षित नहीं रखने के कारण वे किसी उपयोग के योग्य नहीं रहे। उन्होंने हमें बताया कि गत वर्षों में रामकृष्ण संघ से अनेक संन्यासी डेरे की यात्रा कर चुके हैं। शायद इसीलिये डेरे की दीवार पर प्लास्टिक शीट पर श्रीरामकृष्ण का एक चित्र लटक रहा था।

पवित्र धूनी

हमने डेरे का तालाब भी देखा। यह चारों ओर से पक्का था और भक्तों के स्नान हेतु घाट भी बने थे। तालाब के साफ और ठंडे पानी ने इस सूखे स्थान को सुन्दर बना दिया था।

इस प्रकार हमारी छोटी लेकिन बहुत प्रेरणादायी यात्रा समाप्त हुई। हमने लदाना डेरे की महान आध्यात्मिक विरासत, श्रीतोतापुरीजी और उनकी परम्परा के अन्य महापुरुषों का चिन्तन किया। यह कालचक्र का खेल है कि अब यह स्थान भूतकाल का मात्र एक स्मृतिचिह्न ही बन कर रह गया है। आश्चर्य और संतोष की बात यह है कि सामान्य ग्रामीण और भक्तों ने इस स्थान को प्रेरणा और पवित्र स्थान के रूप में पूजकर इस परम्परा को जीवित रखा है। यहाँ आज भी विशेष अवसरों पर ही नहीं, बल्कि प्रतिदिन काफी संख्या में दर्शनार्थी आते हैं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशति हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

जाते समय उन्होंने मुझे एक कमण्डलु साथ ले चलने को कहा। घाट पर जाकर मैं उन्हें स्नान करा लाया। वे गीले कपड़ों में ही लौटे। कमरे में आकर उन्होंने अपने एक वस्त्र पर थोड़ा-सा गंगाजल छिड़क देने को कहा। इसके बाद उन्होंने अपने कपड़े बदले। उनके कमरे में कालीघाट-मन्दिर की माँ-काली का चित्रपट लगा हुआ था। वे उसी पट के पास गये। वहाँ मन्दिर का महाप्रसाद रखा रहता था। उसी में से दो-एक कण अपने मुख में डाला और मुझे भी दिया। इसके बाद वे माँ-काली के चित्र के पास "ॐ काली, ॐ काली" कहते हुए अपने दायें हाथ के तीन नखों से बायीं हथेली से जोड़कर धीरे-धीरे अपने सीने के पास ले जाकर ताली बजाने के बाद कुछ देर तक अधखुली आँखों के साथ खड़े रहे। इसके बाद आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि उनके लिए काली-मन्दिर तथा विष्णु-मन्दिर से फल-मिठाइयों का प्रसाद आया हुआ है। उस दिन उन्होंने बेल का शरबत पीकर मुझे दे दिया; फल-प्रसाद में से भी थोड़ा-थोड़ा स्वयं खाकर मुझे दिया। तदुपरान्त उन्होंने अपने छोटे तख्त पर बैठकर थोड़ा-सा हुक्का पीया।

मन्दिरों में भोग तथा आरती हो जाने के बाद वे मुझे अपने कमरे के पूर्वी बरामदे के दोनों खम्भों के बीच ले जाकर बोले, "जा, गंगाजल में पका हुआ माँ-काली का प्रसाद – महा-हविष्यान्न है। जाकर उसे खा ले।" मैं बोला, "अच्छा।" आँगन से होकर जाते समय मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो वे वहीं खड़े थे; देख रहे थे कि मैं काली-मन्दिर की ओर जा रहा हूँ या विष्णु-मन्दिर की ओर ! मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि वे मुझे विष्णु-मन्दिर में जाने के लिये भी तो कह सकते थे, परन्तु काली-मन्दिर में भेजा – वहाँ तो मछली आदि का भी भोग दिया जाता है – मुझे उधर जाने को क्यों कहा? परन्तु आखिरकार मैं काली-मन्दिर में ही गया।

काली-मन्दिर में जाकर भी मैंने शाकाहारी प्रसाद ही लिया था। वहाँ की गाढ़ी-गाढ़ी चने की दाल अब भी याद है। उन दिनों कालीबाड़ी में जो नित्य उत्सव जैसा परिवेश रहता था, उसे जिन लोगों ने देखा है, वे वर्तमान समय के भोग-राग की व्यवस्था को देखकर चकित रह जायेंगे। प्रतिदिन वहाँ आनेवाले करीब २५० से ३०० तक साधु-सन्त, वैष्णव, ब्राह्मण तथा दीन-हीन आगन्तुक प्रसाद पाया करते थे। आजकल की तुलना में वह मानो राजभोग था ! बड़े-बड़े महापुरुष वहाँ कालीबाड़ी का प्रसाद पाने और वहाँ निर्जन में निवास करने के लिये जाया करते थे।

खाकर लौटने के बाद मैंने देखा कि ठाकुर मेरे लिये पान का एक बीड़ा हाथ में लिये अपने कमरे के पूर्व की ओर के दरवाजे की चौखट के पास भीतर खड़े हैं। मेरे आते ही वे मुझसे बोले, "खा, भोजन के बाद दो-एक बीड़ा खाना चाहिये, नहीं तो मुख से दुर्गन्ध आती है।" साथ ही यह भी बोले, "नरेन (विवेकानन्द) सौ-सौ पान खाता है; जो भी मिलता है, सब खा लेता है। उसकी इतनी बड़ी-बड़ी आँखें और अन्तर्मुखी वृत्ति है। कलकत्ते की सड़कों पर चलते हुए वह सारे मकान, घर-द्वार, घोड़े, गाड़ी सब कुछ नारायणमय देखता है। तू उसके पास जाना, उसका सिमला मुहल्ले में घर है।"

उस दिन मैं दक्षिणेश्वर में ही रह गया।

नरेन्द्र

ठाकुर के मुख से यह बात सुनकर अगले दिन ही मैं उनके सिमला में स्थित पुराने घर में जा पहुँचा। मैंने स्वामीजी को देखा। वे बाहर के एक कमरे में बिस्तर के ऊपर बैठे हुए डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र की लिखी हुई 'Budh-Gaya' (बुद्धगया) नामक पुस्तक खोलकर पढ़ रहे थे। वह पुस्तक वेब्सटर के अंग्रेजी शब्दकोष जैसी मोटी थी। उनके कमरे में सारी चीजें बिखरी हुई थीं और बिस्तर भी अव्यवस्थित था। परन्तु मैं 'नरेन' को देखते ही मुग्ध हो गया। वह सब मेरी दृष्टि में आने पर भी मेरे मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैंने जाते ही उनसे कहा, "ठाकुर ने मुझे यहाँ भेजा

है ।'' वे बोले, ''बैठो ।'' इतना कहकर वे कमरे के भीतर से आकर बैठे और थोड़ी बातचीत के बाद बोले, ''अच्छा, तो तुम ठाकुर के पास गये थे ! फिर आना ।''

इसके बाद मैंने ठाकुर के पास जाकर सब कुछ कहा । वे बोले, ''तो तू नरेन के पास गया था?''

मैंने कहा, ''जी हाँ, आपने जो कहा था, वैसा ही है ।''

ठाकुर बोले, ''एक दिन की भेंट में ही तूने कैसे समझ लिया?''

मैंने कहा, ''मैंने जाकर देखा कि उनकी बड़ी-बड़ी आँखें हैं और वे एक बड़ा-सा अंग्रेजी ग्रन्थ पढ़ रहे हैं । कमरे में चारों ओर सब अस्त-व्यस्त था, परन्तु उस ओर उनका ध्यान नहीं था । उनका मन मानो इस जगत् में ही नहीं है ।''

ठाकुर बोले, ''खूब जाना, उसका खूब संग करना ।''

अपने पिता की मृत्यु के बाद वे बहुत दिनों तक ठाकुर के पास नहीं गये थे । ठाकुर उनके बारे में बड़ी चिन्ता करते थे, कई बार उनके पास सन्देश भी भेजा, परन्तु उन दिनों स्वामीजी के मन की हालत ठीक नहीं थी । सम्भवत: उन्होंने इस भय से आना बन्द कर रखा था कि ठाकुर कहीं उनके कष्टों की बात सुनकर परेशान न हो जायँ ।

इसके बाद मैं जब कभी ठाकुर के पास जाता, तो स्वामीजी, ब्रह्मानन्दजी, अभेदानन्दजी या सारदानन्दजी – इनमें से किसी-न-किसी के साथ मेरी भेंट जरूर होती । एक दिन मैं हविष्यान्न का भोजन करने के बाद ठाकुर के पास गया । सोचा था कि शाम को लौट आऊँगा । उसी समय एक व्यक्ति दक्षिणेश्वर से कलकत्ते आ रहे थे । किसी ने जब उन्हीं के साथ मेरे जाने की बात उठायी, तो ठाकुर बोले, ''नहीं, नहीं । वह अभी छोटा लड़का है । उस वयस्क व्यक्ति के साथ कदम मिलाकर चल नहीं सकेगा । वह इन (भक्त-महिलाओं) के साथ जायेगा ।''

उस दिन योगीन माँ, गौरी-माँ और कृष्णभाविनी[२] आदि ठाकुर के कमरे में उनके पास बैठी हुई थीं । वे उन्हीं लोगों के साथ मेरे जाने की बात कह रहे थे । उस दिन शरत् महाराज (सारदानन्द) भी वहीं थे ।

संध्या-आरती के बाद हम सभी लोग वराहनगर तक जाकर शेयर घोड़ेगाड़ी में सवार हुए । उनमें हम दोनों बालक थे; शरत् महाराज मुझसे बड़े थे । वे बोले, ''तुम बच्चे हो, भीतर जाओ । मैं कोच-बाक्स पर बैठता हूँ ।'' तीन महिलाएँ और मैं गाड़ी के भीतर बैठे ।

इस प्रकार मेरे बचपन का एक-एक दिन मानो एक-एक अति शुभ दिन था, जो मेरे जीवन का एक प्रधान आधार बन गया ।

शंका-समाधान

बीच-बीच में मेरे मन में उठने लगा, ठाकुर कहा करते हैं कि मेरा हविष्यान्न भोजन करना, तेल न लगाना, निरामिष खाना – ये सब बूढ़ों-जैसे भाव हैं, तो क्या ये ठीक नहीं हैं, क्या इन्हें छोड़ देना ही उचित होगा !

इन्हीं दिनों एक बार ठाकुर के पास गया था और प्रसाद भी पाया । इसके बाद उन्होंने थोड़ा विश्राम किया । उनके उठने के थोड़ी देर बाद कुछ कुछ गृहस्थ भक्त उनसे मिलने आये । मैंने फर्श पर चटाई बिछा दी । थोड़ी देर बाद वे लोग ठाकुर से बोले, ''महाराज, ये जो छोटे-छोटे बालक गृहस्थ-धर्म का पालन न करके आपके पास संन्यासी होने आते हैं, यह क्या उचित है?''

ठाकुर ने उत्तर दिया, ''भाई, तुम लोग तो इनका यही जन्म देख रहे हो, पिछले जन्मों की बात तो नहीं जानते । उन्हीं जन्मों में ये लोग अपना गृहस्थ-धर्म पूरा कर आये हैं । इसे इस प्रकार समझो । मान लो एक ही माँ के चार पुत्र हैं । उनमें से एक थोड़ा बोध होते ही कहता है, 'मैं तेल नहीं लगाऊँगा, मछली नहीं खाऊँगा, हविष्यान्न भोजन ही करूँगा ।' माता-पिता खूब जिद करते हैं, पीटने की धमकी तक देते हैं, तो भी वह लड़का अपना त्याग-भाव नहीं छोड़ता । बाकी तीन लड़के भोग लेकर मस्त हैं – जो मिलता है, जितना मिलता है, सब खा लेते हैं । देखो, वह लड़का, जो थोड़ा बड़ा होते ही सब कुछ त्याग देना चाहता है, उसमें सत्त्वगुण अधिक है । सत्त्वगुण का उदय होने पर ऐसा ही होता है ।''

ठाकुर के मुख से यह बात सुनकर मेरे मन में हविष्य-भोजन तथा नियम-पालन के प्रति श्रद्धा में दुगनी वृद्धि हो गयी ।

शेष भाग पृष्ठ ८८ पर

२ सभी लोग उन्हें 'भाविनी' के नाम से सम्बोधित किया करते थे, परन्तु उनका वास्तविक नाम कृष्णभाविनी था । वे बागबाजार के नेबूबागान में निवास करती थीं । वे बहुत अच्छी रसोई बनाना जानती थीं । ठाकुर जब भी बलराम बाबू के यहाँ पधारते, तो वे आकर रसोई बनाकर उन्हें खिलातीं । ठाकुर को उनके हाथ के बने व्यंजन बड़े प्रिय थे । एक दिन वे सहसा कहीं लुप्त हो गयीं, बाद में कुछ पता नहीं चला । किसी-किसी का अनुमान है कि कदाचित गंगाजी में स्नान करते उनका शरीर प्रवाह में बह गया ।

मुक्तिप्राप्ति का सरल मार्ग

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

ईश्वर के सभी कार्यों में अन्य किसी को भी प्रेरणा नहीं देनी पड़ती, जो होता है, स्वयं भगवान की इच्छा से ही होता है। उसका कारण यह है कि ईश्वर को भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल सब मालूम है। हम लोग प्राय: भूतकाल और भविष्यकाल का ही विचार करते हैं, लेकिन भगवान कहते हैं, अभी तुम्हारे हाथ में वर्तमानकाल है, उसी के बारे में सोचो और वर्तमान के ही कर्तव्य कर्म करो। मन में यह बात रखो कि मंगल ही होगा। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने शिवज्ञान से जीवसेवा करने का उपदेश दिया। हमें अपने तन-मन से सेवा और भगवान की उपासना करनी चाहिये। सेवा में कोई इच्छा नहीं रखें। श्रीरामकृष्ण-नामसंकीर्तनम् में गाया जाता है –

परब्रह्म-पराशक्ति-जगद्रूप रामकृष्ण।
धर्मरक्षणाय जगति देहधारि-रामकृष्ण।

भगवान श्रीरामकृष्ण परब्रह्म पराशक्तिस्वरूप हैं। इस संसार में धर्मरक्षणार्थ उन्होंने देहधारण किया है। हमारे लिये उन्होंने जो उपदेश दिया, उनका पालन करने से हमारा जीवन बनेगा। हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग सेवा है। भगवान वही सेवा हमें देते हैं, जो उनको अच्छी लगती है। भगवान वही करते हैं, जिससे हमारा मंगल होता है। ईश्वर की इच्छा में ही हमको अपनी इच्छा को मिला देना है। हमारी बुद्धि सीमित है, हमें अपना मंगल समझ में नहीं आता, किन्तु भगवान जानते हैं कि किसमें हमारा मंगल है और उसे ही वे करते हैं। इसलिये हमें भगवान के चरणों में अपना सब कुछ उत्सर्ग कर देना है।

जितनी शक्ति हमें भगवान ने दी है, हमें उतना करना चाहिये और शेष भगवान पर छोड़ देना चाहिये। संसार में हमें सब तरह से सावधानी रखनी चाहिए। ईश्वर की कृपा ही है कि उन्होंने हमें बुद्धि दी है, जिसका उपयोग हम अपनी साधना में कर सकते हैं, उसे भगवान में लगा सकते हैं। ईश्वरीय विधान में हम भले ही कुछ न कर सकें, किन्तु हम भगवान का नाम ले सकते हैं और अपने और संसार के मंगल के लिये उनसे प्रार्थना कर सकते हैं। भगवान द्वारा निर्मित यह सारा जगत ही विचित्र है ! इसमें हमें भगवान पर विश्वास रखकर अपने जीवन में आगे बढ़ना है। भगवान के नाम में अपार शक्ति है। सदा उनका नाम लेते हुये कार्य करते रहें। यह सबसे सरल साधना है।

अच्छे कर्मों का एक बड़ा लाभ यह है कि इस जन्म में किये गये अच्छे कर्म हमें इस लोक और परलोक दोनों में हमारे जीवन-विकास में सहायता करते हैं। भगवान के नाम-स्मरण से जन्मों के कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं। संसार में हम सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। किसी से वैर भाव भूलकर भी न रखें। क्षमा करने से बहुत लाभ होता है। किसी भी प्रकार की बदले की भावना नहीं रखें। दूसरों का कल्याण ही सोचना और करना चाहिये। ऐसा करने से मन में अनुकूल-प्रतिकूल भाव नहीं रहेंगे, हम प्रसन्न रहेंगे और अन्त समय में आनन्द से ही जायेंगे।

केवल बड़े आदमी के घर सब सुविधाओं में जन्म लेना अच्छी बात नहीं है। अच्छी बात तो यह है कि शुभ संस्कारित परिवार में हमारा जन्म हो। यदि हमारा पूर्वजन्म का शुभ संस्कार हो, तो इसी जन्म में हमें सब कुछ मिल सकता है। सदाचारी परिवार न हो, तो बड़ा दुख होता है। हमें यह जीवन भोग के लिये नहीं, मुक्ति पाने के लिये मिला है। हमने पिछले जन्म में सत्कर्म किये होंगे, तो हमें इस जन्म में अच्छे गुरु, सत्संग, साधु-संग मिलता है। हमें जो सत्संग मिल रहा है, यह ईश्वर की बड़ी कृपा है। संन्यासी संसार की अनित्यता को देखकर सत्य को पकड़ लेते हैं और अपने जीवन का उद्धार करते हैं।

काल सबको दुर्बल और नष्ट कर देता है। इसलिए मोक्ष के लिये प्रयत्न करो। इसके लिये सत्संग, सच्चर्चा करो, नाम-जप-प्रार्थना करो और भगवान के शरणागत रहो। सत्कर्म करो और ईश्वर-भाव से सबकी सेवा करो। भगवान की दी हुई सम्पत्ति उनकी सेवा में लगाओ। ऐसा करते-करते धीरे-धीरे मन में वैराग्य आयेगा। संसार में किसी वस्तु, स्थान, व्यक्ति से आसक्ति नहीं रहेगी। अपने जीवन को चरित्रवान बनाओ, सादा-सरल और आध्यात्मिक जीवन बिताने का प्रयत्न करो। यही मुक्तिप्राप्ति का सरल मार्ग है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (६४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

५-०२-१९६१

प्रश्न – एक देशभक्त ने आकर महाराज से कुछ वार्तालाप किया। महाराज ने प्रसंगानुसार उनसे कहा, "इतने दिनों तक तुमने अपमान से क्रोधित हो अनशन (भूख हड़ताल) किया, अब कहो कि प्रकृति के विरोध में अनशन करूँगा। काम, क्रोध, लोभ के रंचमात्र प्रलोभन को निर्ममतापूर्वक दमन करूँगा। स्वामीजी ने चिल्ला-चिल्लाकर यही तो कहा है – हृदय, हृदय। उन्होंने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके यही समझा कि कहीं भी हृदय – संवेदना नहीं है। हृदय रहने से स्वयं ही मस्तिष्क और हाथ अर्थात् विचार और कर्मशक्ति आ जायेंगे। किन्तु एक प्रकार का हृदय अवश्य ही दिखता है – अकस्मात् किसी व्यक्ति विशेष के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है, कभी खतरनाक मनोभाव आ जाता है, अगले ही पल हिंसक हो जाता है। जो ठाकुर के अनुयायी होंगे, वे देशभक्त होंगे। स्वामी अभेदानन्द जी ने नेताजी को बुलवाया था और अत्यन्त अस्वस्थ हालत में भी उठकर उनका आलिंगन करना चाहा था। ठाकुर और स्वामीजी का अनुयायी होकर यदि कोई देशभक्त नहीं है, तो निश्चित ही वह उनका अनुयायी नहीं है।

६-२-१९६१

प्रश्न – यदि हम विचार छोड़कर भक्ति-पथ की साधना करें, तो क्या कोई संकट है?

महाराज – जैसे वैरागियों के लिए हरिनाम अनिवार्य है, वैसे ही सर्वदा पंचकोशों का विचार नहीं करने से कोई संन्यासी नहीं हो सकता। कैसे होगा? मैं अमुक नहीं हूँ, अमुक का पुत्र नहीं हूँ, मैं विश्वविद्यालय का अमुक नहीं हूँ। यह सब कैसे भूलोगे? जो लोग पूर्वाश्रम में (घर में) बहुत शान-शौकत से रहते थे, वे घर का अहंकार थोड़ा भी नहीं छोड़ सकते, घूम-फिरकर उसी घर की बात कहते हैं। अपनी बड़प्पन की भावना का भोग करते हैं। भक्ति-पथ से भी होता है, किन्तु बहुत देर लगती है, फिर उसमें अनेक संकट की भी सम्भावना रहती है। हम लोग अपने घर में संन्यासी जैसे ही थे, घर का अहंकार नष्ट नहीं होता। एक बंगाली संन्यासी हुआ, वह बंगालियों को छोड़कर अन्य किसी के साथ भी नहीं मिलता-जुलता है, दूसरी भाषा नहीं सीखता है ! चेन्नई में किसी ने भाषण में कहा – श्रीरामकृष्ण एक बंगाली संत थे !!

प्रश्न – क्या अवतार भी सोते हैं?

महाराज – एक दिन ठाकुर ने निद्रा से उठते ही कहा, मैंने स्वप्न में कुम्हड़े का फूल देखा। तभी मास्टर महाशय बाजार से लाने के लिये जाने लगे। ठाकुर ने कहा, नहीं, लाने की आवश्यकता नहीं है। ठाकुर जैसे सोते थे, हम लोग भी वैसे ही सोते हैं, किन्तु अन्तर यह है कि उनकी निद्रा का आवरण उनके अपने हाथ में है, वे इच्छानुसार उसे उतार सकते हैं, धारण कर सकते हैं, किन्तु हमलोग ऐसा नहीं कर पाते। फिर सुषुप्ति के समय वे अपने स्वरूप में चले जाते हैं, किन्तु हमलोग अपने स्वरूप को आवृत कर पड़े रहते हैं। अवतार-लीला की यही सबसे विलक्षणता है कि जब वे अवतार हैं, ठीक उसी समय वे पूर्णब्रह्म भी बने रहते हैं। इस महान तत्त्व को भागवत में कहा गया है – जितनी गोपियाँ, उतने कृष्ण।

वैष्णवों ने हरिनाम में शुद्धाभक्ति का भाव प्रवर्तन किया है। यह बड़े उच्च स्तर की वस्तु है। उन्होंने जन-साधारण के योग्य बनाकर उसे प्रस्तुत किया। ब्राह्मण लोग तो शास्त्रज्ञ थे, किन्तु उन्होंने इसके विपरीत शाक्त, तन्त्र मत में उन्मत्त होकर चंडी, रामप्रसाद, आगमनी संगीत में देश को मतवाला बना दिया। यह ज्ञानमिश्रा भक्ति है, हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी है।

साधारण जनता का धर्म बहुत अच्छा है, यदि वह किसी के भी साथ न मिले तो। गुरु ने कहा है – जो कृष्ण का भजन नहीं करता, वह नरक में जायेगा। अच्छी बात है, तुम इसे जानकर चुपचाप साधना करो, किन्तु अन्य लोगों के साथ मिलने से ही संकट है। **(क्रमशः)**

ईशाावास्योपनिषद (२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

कृत माने जो किया गया है। अकृत माने जो कर्म से उत्पन्न नहीं होता, कर्म से नष्ट नहीं होता। अकृत माने शाश्वत सुख। तुम ऐसा मानते हो कि कर्म से तुम्हें शाश्वत सुख मिलेगा? थोड़ा-सा चिन्तन करके देखो, परीक्षा करके देखो कि कर्म से तुम्हें अक्षय सुख कैसे मिलेगा? असम्भव है। **ब्राह्मणः निर्वेदम् आयात्** – ब्राह्मण को निर्वेद होना चाहिये। कौन ब्राह्मण है? ब्राह्मण का तात्पर्य ब्राह्मण-कुल से, जाति से नहीं है। जो ब्रह्म की गवेषणा करना चाहता है, जो ब्रह्म को जानने की अभीप्सा रखता है, वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण को निर्वेद हो जाना चाहिए, उसमें वैराग्य होना चाहिए। वह यह जान ले कि कृत से अकृत, शाश्वत सुख नहीं मिलता है। कहते हैं, यदि वह उस अकृत को, अक्षय सुख को जानना चाहता है, तो उसे जाना चाहिए। कहाँ? **स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** – वह ऐसे गुरु के पास जाये, जो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हैं। कैसे जाये? **समित्पाणिः** – विनयपूर्वक ज्ञान की याचना करता हुआ जाय।

कैसे गुरु के पास जाये? जो श्रोत्रिय हों, जिन्हें श्रुतियों का ज्ञान हो और जो ब्रह्मनिष्ठ हों – जिनकी निष्ठा ब्रह्म में हो। मुझे श्रुतियों का ज्ञान हो सकता है, पर यह आवश्यक नहीं कि मैं ब्रह्मनिष्ठ होऊँ। मैं श्रोत्रिय होकर भी धर्मनिष्ठ हो सकता हूँ, यशोनिष्ठ हो सकता हूँ। मुझे श्रुतियों का ज्ञान है, पर मेरी निष्ठा धन में है, सम्पत्ति में है। हमें देखना है कि अपनी श्रुतियों के ज्ञान के बल पर मैं चाहता क्या हूँ? मैं पैसा चाहता हूँ, नाम चाहता हूँ अथवा मैं सत्य को चाहता हूँ? अधिकतर तो हम यह देखते हैं कि मनुष्य अपने पाण्डित्य के बल पर धन-सम्पदा चाहता है, यश चाहता है, लोगों में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे, यह चाहता है, तो वह गुरु होने के लायक नहीं है, यह कहा गया है। गुरु वही हो सकता है, जो ब्रह्मनिष्ठ है, जिसे श्रुतियों का ज्ञान हो, पांडित्य हो और पांडित्य का विनियोजन उस ब्रह्म की प्राप्ति में हो। शंकराचार्य ने विवेकचूडामणि में कहा है –

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये।। (६०)

– बैखरी वाणी, शब्दझरी, शास्त्रव्याख्यान में दक्षता, विद्वत्ता ये सभी भोग के लिये हैं, मुक्ति के लिये नहीं।

बैखरी वाणी है, जब व्यक्ति बोलता है, तो शब्दों का झरना फूटने जैसा लगता है। शास्त्रों के व्याख्यान में अपूर्व कुशलता प्राप्त है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह मोक्ष का अधिकारी हो। मनुष्य मुख से प्रस्फुटित अपनी बैखरी वाणी, शास्त्रों को समझाने की अपनी कुशलता का उपयोग भोग के लिए कर सकता है, मोक्ष में ही उन सबका विनियोजन हो, ऐसी कोई बात नहीं है। पर हमलोग भ्रम में पड़ जाते हैं। कोई बहुत सुन्दर वक्ता है, शास्त्रों पर बड़ा सुन्दर व्याख्यान देता है, तो मात्र इतने ही से हमें लगता है कि वह ब्रह्मनिष्ठ हो गया है, उसने ब्रह्म को जान लिया है। शास्त्र कह रहे हैं, यह आवश्यक नहीं है, कई प्रकरणों में वह उलटा ही होता है, वह व्यक्ति धननिष्ठ होता है, यशोनिष्ठ होता है, किन्तु ब्रह्मनिष्ठ नहीं होता है। अब कर्म में और ज्ञान में विरोध चलने लगा। कर्मकाण्डी मानने के लिए तैयार नहीं। ज्ञानी कर्म को हेय सिद्ध करने लगे। वे कहते रहे कि कर्म हेय है, ये क्या करते हो? नाहक यज्ञ के धूम से अपने को काले करते हो। कभी विचार किया है? बुद्धि का शोधन किया है? यह झगड़ा चल रहा था। ऐसे समय ईशावास्योपनिषद दोनों में ज्ञान और कर्म का सेतु बनकर आती है। वह ज्ञानियों से कहती है कि कर्म इतना निन्दनीय नहीं है और कर्मकाण्डियों से कहती है, देखो, ज्ञान के बिना, तो तुम्हारा कोई आधार ही नहीं है। इस प्रकार दोनों में सेतु उपस्थित करनेवाली यह ईशावास्योपनिषद है।

आप भी पढ़ते हैं कि शुक्ल यजुर्वेद में वाजसनेयी संहिता है। उसमें चालीस अध्याय हैं। उसमें ३९ अध्याय कर्म पर हैं और जो ४०वाँ अध्याय है, वह ईशावास्योपनिषद है। हम जो वेदान्त शब्द का शब्दार्थ कर रहे थे कि वेदों का जो अन्तिम भाग है, उसे वेदान्त कहते हैं, उपनिषद कहते हैं। उस दृष्टि से भी मानो इस पर वह शब्दार्थ लागू हो जाता है। ईशावास्योपनिषद में ज्ञान की पराकाष्ठा भी है और यह

भौतिक दृष्टि से शुक्ल यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय भी है, तो दोनों ही अर्थ इस उपनिषद पर लागू होते हैं। बहुत छोटा-सा है। इसमें १८ मन्त्र हैं। पर इन अठारह मन्त्रों में साधना और सिद्धि, इन दोनों पर सुन्दर सूत्रात्मक विचार व्यक्त किया गया है। इसके कौन ऋषि हैं? कौन कर्ता हैं? इसका कुछ पता नहीं। उपनिषद की परम्परा बड़ी विलक्षण है ! कहीं पर किसी ऋषि का नाम नहीं आता कि किसने इसे रचा है? एक श्वेताश्वतर उपनिषद है। लोग कहते हैं कि कोई श्वेताश्वतर नामक ऋषि थे, किन्तु इस नाम के ऋषि थे या नहीं, इस पर विवाद है। यहाँ पर ऋषियों ने अपना नाम रखा ही नहीं। यदि वे नाम रखते, तो आत्मतत्त्व कट जाता, मानो आत्मतत्त्व को प्रमाणित करने के लिए किसी ऋषि का नाम नहीं है। देह-बोध रहने से तो नाम रहेगा। जब देह-बोध ही नहीं, तो नाम कहाँ से रहेगा।

ईशावास्य इस शब्द से उपनिषद शुरू होती है, इसलिए इसका नाम रख दिया - ईशावास्योपनिषद। हमलोग एक छोटी-सी भी किताब लिखेंगे, कुछ यहाँ से चुरायेंगे, कुछ वहाँ से चुरायेंगे और हम कहते हैं, यह हमारा मौलिक विचार है, हमारा मौलिक चिन्तन है और हमारा नाम सबसे बड़े अक्षरों में उसमें रहेगा। किन्तु ये जो ऋषि हैं, जिनके चिन्तन ने समाज को कितना प्रभावित किया, पर कहीं उनका अपना नाम नहीं दिखाई देता। विलक्षण है !

शॉपेनहॉवर की यह बात शायद आपने भी पढ़ी होगी। वे कहते हैं - In whole world there is no study as sublime and as elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life, it will be the solace of my death. इस पर मैक्समूलर कहते हैं – यदि शॉपेनहॉवर के इन शब्दों को प्रमाणित करने के लिए किसी से कहा जाये, तो मैं प्रमाणित करने के लिए आगे आता हूँ। वे कहते हैं - If these words of Shopenhaver require any confirmation, I confirm these words of Shopenhaver, as a result of my lifelong studies of the Upanishad. मैक्समूलर कह रहे हैं, जीवनभर मैंने उपनिषदों का स्वाध्याय किया और उसके बल पर मैं उस कथन की पुष्टि करता हूँ। ऐसे ये उपनिषद हैं। ईशावास्योपनिषद ज्ञान और कर्म में सेतु स्थापित करने वाली, दोनों के विवाद को मिटाने वाली है। यह ज्ञान से कहती है कि तुम कर्म का इतना तिरस्कार मत करो। क्योंकि ज्ञान की परिपक्वता कर्म के माध्यम से ही आयेगी। उसने कर्म से कहा कि तुम ज्ञान को छोड़कर के क्या पाने जा रहे हो? ज्ञान को छोड़कर कुछ भी नहीं है, तुम रीते के रीते ही रहोगे, यज्ञ के धुएँ से तुम काले ही बने रहोगे और ऐसा कहकर के कर्म और ज्ञान दोनों की उपयोगिता प्रमाणित करते हुए दोनों में सेतु स्थापित करने का काम ईशावास्योपनिषद करती है। जैसा मैंने कहा कि छोटी-सी है। ज्ञानेश्वर महाराज छोटे-से के बारे में कहते हैं – आंगेसाने परिणामे थोर, जैसे गुरुमुखी चे अक्षर। अर्थात् जैसे गुरु के मुख से निकला अक्षर, मंत्र, है तो बहुत छोटा-सा, पर उसका परिणाम बहुत बड़ा है, बहुत महत्त्व का है, बहुत महान है। यह वाक्य इस उपनिषद पर लागू किया जा सकता है। इसका कलेवर अठारह मंत्रों का बहुत छोटा है, परन्तु उसका परिणाम बहुत बड़ा है। यह संक्षेप में ईशावास्योपनिषद की भूमिका हुई। **(क्रमशः)**

शिव आये चलकर निज धाम

मोहनसिंह मनराल, अलमोड़ा

शिव आये चलकर निज धाम ।
खड़ा हिमालय करे प्रणाम ।।
नये विचार उदित हो पल-पल, नदियाँ बहतीं रहतीं कल-कल,
पक्षी अगणित गाते गीत, धरती सहती रहती शीत,
जहाँ ऋषियों ने ध्यान लगाया, जहाँ मुनियों ने आश्रय पाया,
जहाँ करने सत्य की खोज, हर युग का अन्वेषक आया,
योगी करते महिमा गान ।।
शिव आये ...
लगी समाधि हुये शिव रूप, गहन ध्यान में उतरे डूब,
अणु-ब्रह्माण्ड का पाया ज्ञान, जीव ब्रह्म हैं एक समान,
हुए हिमालय के प्रतिरूप, शेष रहा न रूप न नाम ।।
शिव आये ...
अचल-अटल तुषारमण्डित, शुभ्र श्वेत पावन अघखण्डित,
गंगा-यमुना पावन धारा, जन-जन का जिसने दुख हारा,
थके न कभी सँवारे जीवन, कभी नहीं जिसके विश्राम ।।
शिव आये ...
ध्यान जो जोड़े जड़ता छोड़े, छूटे आलस-प्रमाद अज्ञान,
विविध तापों से मुक्ति पाये, ज्ञान गंगा में करके स्नान,
निर्मल होये कभी न सोये, जागे चले शिखर की ओर,
भय क्या उसे उसे क्या शंका, जिसकी शिव ही थामे डोर,
स्मरण-मनन करें अविराम ।।
शिव आये ...

नन्हीं मुकुलमाला और श्रीमाँ सारदादेवी

श्रीमाँ सारदा देवी का जन्म २२ दिसम्बर, १८५३ को जयरामबाटी, पश्चिम बंगाल में हुआ था। यह कोलकाता से लगभग १०३ कि.मी. की दूरी पर है। भक्त उन्हें प्रेम से केवल 'माँ' कह कर पुकारते थे। श्रीमाँ सारदा देवी का एक निवास-स्थान 'उद्बोधन' कोलकाता में भी था।

कोलकाता में मुकुलमाला नाम की पाँच वर्ष की छोटी बच्ची रहती थी। उसके घर के लोग श्रीमाँ सारदा देवी के भक्त थे। मुकुलमाला बीच-बीच में श्रीमाँ से मिलने आती थी। वह जब भी श्रीमाँ के पास जाती, माँ से लिपट जाती। माँ भी उसे बहुत प्रेम करतीं और उसे बहुत सारी मिठाइयाँ और खाने की चीजें देतीं। एकबार श्रीमाँ भगवान को भोग देने के लिए बैठी थीं। उस समय नन्ही मुकुलमाला मन्दिर में भगवान को प्रणाम करने आई। वहाँ वह भगवान के लिए रखे फल-मिठाई को ही देखने लगी, तब अचानक श्रीमाँ उसके पास आई और उन्होंने हँसते-हँसते फल और बताशे देते हुए कहा, ''अरे, भगवान को निवेदित करने के पहले ही खा लिया।'' इसके बाद जब भी श्रीमाँ मुकुलमाला को प्रसाद देतीं, तो मुकुलमाला उनसे पूछती, ''तुम्हारे भगवान ने पहले खाया है न?'' जब वह ९ वर्ष की थी, तब श्रीमाँ ने उसे मन्त्र-दीक्षा भी दी थी। मुकलमाला में एक दोष यह था कि वह बहुत नटखट थी। इतनी नटखट कि उसके घर वाले भी उससे बहुत परेशान थे।

एकबार श्रीमाँ कोलकाता से जयरामबाटी जाने वाली थीं। श्रीमाँ जयरामबाटी जाकर बहुत दिनों के बाद वापस आनेवाली थीं। मुकुलमाला माँ से मिलने आई। श्रीमाँ ने उससे पूछा, ''तुम यहाँ बहुत दिनों से आ रही हो, क्या तुम मुझे प्रेम करती हो।''

''हाँ माँ, मैं तुम्हें बहुत प्रेम करती हूँ।'' मुकुलमाला ने कहा।

''कितना प्रेम करती हो?''

मुकुलमाला ने अपने छोटे-छोटे हाथ फैलाकर कहा, ''इतना।''

श्रीमाँ ने कहा, ''अच्छा, जब मैं जयरामबाटी चली जाऊँगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगी।''

''हाँ माँ, मैं तब भी तुम्हें उतना ही प्रेम करूँगी और तुम्हें भूलूँगी नहीं।''

''किन्तु मैं यह कैसे जानूँगी?'' श्रीमाँ ने पूछा

''तुम्हें मालूम हो, इसके लिए मैं क्या करूँ?'' मुकुलमाला ने पूछा।

श्रीमाँ ने कहा, ''मैं यह तभी समझूँगी, जब तुम अपने घर के सभी लोगों को प्यार करोगी।''

''ठीक है, मैं घर के सभी लोगो से प्रेम करूँगी और मैं अब शैतानी नहीं करूँगी।''

''बहुत अच्छा। किन्तु मुझे कैसे पता लगेगा कि तुम सबको एक जैसा प्यार करती हो, किसी से कम नहीं और किसी से अधिक नहीं?''

मुकुलमाला ने पूछा, ''सबको एक समान प्रेम कैसे करूँ?''

तब श्रीमाँ ने जो बात मुकुलमाला से कही, उसका यदि हम अपने पूरे जीवन में पालन करेंगे, तो हम कभी भी दुखी नहीं होंगे। श्रीमाँ ने कहा, ''मैं तुम्हें बताती हूँ कि सबसे एक समान प्रेम कैसे किया जाता है। तुम जिनसे प्रेम करती हो, उनसे कुछ माँगो मत। यदि तुम माँगोगी, तो कुछ लोग तुम्हें अधिक देंगे, कुछ कम देंगे। तब जो तुम्हें अधिक देंगे, उनसे तुम अधिक प्रेम करोगी और जो लोग तुम्हें कम देंगे, उनसे तुम कम प्रेम करोगी। इस प्रकार तुम्हारा सबके ऊपर समान प्रेम नहीं होगा। तुम सभी से पक्षपात के बिना प्रेम नहीं कर सकोगी।''

नन्हीं मुकुलमाला ने माँ से कहा कि वह घर के सभी लोगों को प्रेम करेगी। इस घटना के बाद उसका अपने घर के लोगों के प्रति आचरण पूरा बदल गया। उसके घर के लोगों ने भी यह बात श्रीमाँ से कही थी। ❍❍❍

(सन्दर्भ : पृ. ६५०, श्री सारदा देवी एण्ड हर डिवाइन प्ले)

एक दिन का उपवास : सोशल मीडिया से दूर रहने का

स्वामी मेधजानन्द

कॉलेज में एक अध्यापक अपने छात्रों को एक घटना सुना रहे थे, ''क्या आपको याद है, कुछ दिनों पहले, ३ नवम्बर, २०१७ को एक बहुत बड़ी त्रासदी घटी, जिसने पूरे विश्व को झकझोर दिया। विश्व के अधिकांश देश और उसमें भी विकासशील देशों के लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। भगवान न करे, वह दिन फिर कभी आए।'' छात्रगण भी एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे और सोचने लगे कि कुछ महीनों पहले ऐसी क्या घटना घटी थी। जब उन्हें कुछ न सूझा तो उन्होंने अध्यापक जी से पूछा कि आखिर ऐसी क्या घटना घटी थी? अध्यापक जी ने सहज भाव में कहा, ''उस दिन व्हाट्स एप ३० मिनट के लिए बन्द हो गया था !'' सभी छात्र ठहाका मारकर हँस पड़े।

वैसे यह घटना है सामान्य, किन्तु उस दिन व्हाट्स एप मैसेजिंग सर्विस के विश्व-भर में ३० मिनट शट्-डाउन होने से लोगों में जो उत्पात मचा, वह चौंका देने वाला था। कुछ लोगों ने ट्वीट कर, तो कुछ लोगों ने वीडियो क्लिप बनाकर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, कुछ लोगों ने कहा कि वे मैसेज, ग्रूप चैट, वीडियो कॉलिंग नहीं कर पा रहे हैं। हाँ, यदि ये प्रतिक्रियाएँ व्यावसायिक लेन-देन अथवा आवश्यक कार्यों के कारण हैं, तो इन्हें उचित समझा जा सकता है। क्योंकि इन्टरनेट और उसमें भी सोशल मीडिया हमारे जीवन का एक अविभाज्य अंग बन चुका है। विकासशील देशों की तो बात ही क्या, अन्य देशों के लोग भी इनसे अछूते नहीं रह सकते।

संसार में जब भी कुछ बहुत बड़ी खोज अथवा आविष्कार होता है, तो पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच कुछ मतभेद होता है। पुराने लोग कहते हैं कि वे जिस प्रकार करते आए हैं, वही ठीक है और नए लोग कहते हैं कि हम वहीं तक क्यों रुक जाएँ, हम हर क्षेत्र में आगे बढ़ेंगे। जो भी हो, किन्तु एक बात अवश्य है कि मानवीय मन सदैव नित-नवीन चिन्तन, खोज और उसके अनुरूप कार्य करता रहता है।

छुट्टियों में लोग हिल-स्टेशन इत्यादि स्थानों में इसलिए जाते हैं कि वे शहर के कोलाहल से दूर प्राकृतिक सौन्दर्य, शुद्ध हवा, इत्यादि का लाभ उठाकर स्वयं को तरो-ताजा कर सकें। हम लोग पहले गाँवों में रहते थे और प्रकृति के शुद्ध, सुरम्य और पवित्र वातावरण के साथ जुड़े रहते थे। नदी, पर्वत, हरियाली, खुला मैदान, सर्वत्र कलरव करते हुए पक्षी – ये सब हमारे जीवन का अभिन्न अंग थे। आज उन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं के सुखभोग के लिए हमें अन्य स्थानों में जाना पड़ता है। ठीक वैसे ही आज के इस सोशल मीडिया से ग्रस्त और व्यस्त वातावरण में हमें कुछ समय अपने और अपनों के लिए निकालना चाहिए। यह बात अवश्य है कि शिक्षण, चिकित्सा, कृषि, तकनीक, व्यवसाय, लोक-व्यवहार, इत्यादि क्षेत्रों में सोशल मीडिया के द्वारा विचार और वस्तु-विनिमय सहज हो गया है। आधुनिक युग में हमें इन वस्तुओं का ज्ञान होना भी चाहिए और इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु हमें यह भी देखना है कि इन सुविधाओं के द्वारा हमारी शान्ति, शारीरिक और मानसिक स्वस्थता, परस्पर मानवीय-सम्बन्धों में कहीं बाधा तो नहीं आ रही है।

इन्टरनेट, सोशल मीडिया जैसी सुविधाओं के आने से, तो हमारे जीवन में शान्ति बढ़नी चाहिए, पर ऐसा न होकर इसके विपरीत ही दिखाई दे रहा है। इसके अत्यधिक उपयोग से चंचलता, उद्विग्नता, मानसिक तनाव के साथ-साथ नैतिक अध:पतन भी बढ़ रहा है। तो क्या हम इन इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स और सोशल साइट्स का उपयोग करना बन्द कर दें? नहीं, हम इनका संयमपूर्वक उपयोग करें। इनके लिए हम निश्चित समय रख दें और जितना अपने जीवन के लिए आवश्यक हो, उतना ही उपयोग करें। उनके ऊपर सम्पूर्ण निर्भर न होकर हम स्वावलम्बी जीवन जीएँ। आभासमय जगत से ऊपर उठकर हम वास्तविक जीवन जीएँ।

वास्तविक जीवन की उपेक्षा कर आभासमय जीवन में जीना वैसा ही है कि सच्चे बहुमूल्य हीरे होने पर भी हम काँच की मणियों के पीछे दौड़ रहे हैं। हमें यह तो पता है कि संसार के किस कोने में क्या हो रहा है, किन्तु अपने स्वजन-परिजनों की हमें कुछ खबर नहीं है। सागर के पास रहकर भी हम पानी के लिए तड़प रहे हैं। कई देशों में बात यहाँ तक पहुँच गई है कि लोग एक साथ होते हुए भी एक-दूसरे से बात न कर चैट करना पसन्द करते हैं। एप्पल के सी.इ.ओ स्टीव जॉब ने जब आई-पैड डिवाइस को लॉन्च किया, तब उनसे पूछा गया कि उनके बच्चे इसका उपयोग कैसे करते हैं, तब स्टीव जॉब ने कहा कि उनके बच्चों ने इसका उपयोग नहीं किया है और उन्होंने बच्चों के लिए इन गैजेट्स का उपयोग करने की एक सीमा बनाकर रखी है ।

सप्ताह अथवा महीने में हम एक दिन ऐसा रख सकते हैं, जिसमें हम सोशल मीडिया से दूर रहकर कुछ समय अपने और अपनों के लिए निकाल सकें। इससे हम कुछ खोएँगे नहीं, बल्कि जीवन में और भी अधिक शान्ति और आनन्द पाएँगे। OOO

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२६)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

कुछ प्रश्नों की चर्चा के बाद पूज्य महाराज मौन हैं। उन्होंने स्वयं ही विद्यापतिजी के दो पदों की आवृत्ति की, जिसमें विद्यापतिजी कह रहे हैं, भगवान के बिना तुम्हारे दिन कैसे कटेंगे? महाराज बहुत गम्भीर किन्तु व्याकुलतापूर्वक कहने लगे, निरंजनानन्दजी की ईश्वर-प्राप्ति के लिये ठाकुर कितने व्याकुल थे ! कहते हैं – अरे निरंजन ! दिन बीतते जा रहे हैं। तुम ईश्वर-प्राप्ति कब करोगे? निरंजन को ईश्वर-प्राप्ति नहीं हुई, इसके लिये वे कितने चिन्तित थे ! क्या हमलोगों को वैसी व्याकुलता हो रही है? हमलोगों का जीवन समाप्त हो गया। तुमलोगों का जीवन भी समाप्त होने जा रहा है। क्या हमलोगों को ईश्वर-प्राप्ति के लिये ऐसी व्याकुलता हो रही है? भगवान के बिना तो जीवन ठीक ही चल रहा है !

प्रश्न – महाराज ! व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है?

महाराज – क्यों नहीं हो रही है, इसे कहा नहीं जा सकता। नहीं हो रही है, यह समझ में आता है। सब कुछ जान-बूझकर भी हमलोग उनके लिये व्याकुल नहीं हो पाते। यही माया है। वास्तविक बात है, क्या हमारा जीवन भगवान के बिना असह्य प्रतीत हो रहा है? नहीं हो रहा है। क्योंकि उनके बिना भी तो हमारा जीवन ठीक ही चल रहा है। खाना-पीना, शयन, आनन्द करना, इन सब चीजों से ही हम ठीक हैं। महाराज (राजा महाराज) कहते थे, जो करना है, तीस वर्ष की आयु के भीतर ही कर लो। बाद में नहीं कर सकोगे। ठीक ही तो, युवावस्था का तेज, बल सब चला जाता है। बाद में (साधन-भजन) नहीं होता है।

– व्याकुलता क्यों नहीं होती है, थोड़ा और बताइए।

महाराज – जिस दिन गृह-त्याग किया था, उसे याद करके देखो तो, क्या वह वैराग्य, वह तेज, वह दृढ़ता अभी है? दिन-पर-दिन कम होता जा रहा है। याद आ रही है, जिस दिन गृह-त्याग कर जा रहा था, उस समय क्या व्यग्रता, व्याकुलता थी ! कटि में वस्त्र टिक नहीं रहा है। लगता था कि सभी लोग जग जा रहे हैं। भनक लग जायेगी। कपड़ा बाँधने जाने पर जल्दबाजी में बाँध नहीं पा रहा हूँ। ऐसी मन की अवस्था थी। सोचकर देखो, वह वैराग्य कम हो गया है या नहीं।

– हाँ महाराज ! कम हो गया है। तब क्या हमलोगों का वैराग्य मर्कट-वैराग्य था?

महाराज – वैसा क्यों होगा? जब सबने गृह-त्याग किया था, तब भगवान के लिये ही तो किया था। जब गृह-त्याग कर निकला था, तब क्या कपटता थी? बिलकुल ही नहीं थी।

– तब महाराज, हमलोग उस वैराग्य को अक्षुण्ण क्यों नहीं रख सके? कैसे उस वैराग्य को अक्षुण्ण रखा जाय?

महाराज – साधन-भजन के द्वारा वैराग्य को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

– क्या वह ईश्वर की कृपा के बिना नहीं होता?

महाराज – ईश्वर-कृपा ईश्वर का काम है, वे कृपा करेंगे या नहीं, वह उनका काम है। (उच्च स्वर में) हमलोग क्या कर रहे हैं? हमलोग तो सब कुछ कर सकते हैं। हमलोग अपने लिये सब कुछ करने का समय पाते हैं, किन्तु उन्हें (ईश्वर को) प्राप्त करने के प्रयत्न के समय कहते हैं, उनकी कृपा के बिना नहीं होगा !

प्रश्न – स्वामीजी कहते हैं – ''प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य तथा आन्तरिक प्रकृति को नियमन करके इस ब्रह्मत्व को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मन:संयम अथवा ज्ञान, इनमें से

किसी एक, कुछ या सभी मार्गों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।'' पुन: उन्होंने मठ की नियमावली में कहा है, जिसके जीवन में चारों योगों का समन्वय नहीं हुआ, उसने जीवन में रामकृष्ण-भाव को आत्मसात् नहीं किया है । तब क्या पहला कथन हमलोगों के लिये नहीं है?

महाराज – हाँ, सब कुछ सबके लिये है। जो जितना कर सकेगा। स्वामीजी की यही उदारता का परिचय मिलता है, जो व्यक्ति एक या दो योग का भी पालन करेगा, उसको भी वे उत्साहित कर रहे हैं। किन्तु आदर्श के रूप में चारों योगों के समान समन्वय की बात उन्होंने कही है। ईश्वर-प्राप्ति करना ही सच्ची बात है। वह चाहे एक योग से हो, दो से हो या सबके द्वारा हो, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमलोगों को लक्ष्य तक पहुँचना होगा। उसके लिये जितने उपाय हैं, क्या उन सबकी सहायता लेना अच्छा नहीं है? जब सोना गलाते हैं, तब नहीं देखे हो क्या? एक हाथ से पंखा से हवा करता है, मुँह से पाइप से फूँकता है, हापर से हवा देता है और हथौड़ी से प्रहार करता है। वास्तविक बात है कि वह सोना गलाने के लिये व्याकुल है। जितने उपाय या उपकरण उसके पास हैं, वह सबका उपयोग कर रहा है। हमलोगों को ईश्वर-प्राप्ति के लिये जब ऐसी व्याकुलता होगी, तब अधिक छाँटा-छाँटी नहीं करेंगे। ईश्वर के पास जितना शीघ्र पहुँच सकें, इसके लिये जितने उपाय हैं, हम सबका उपयोग करेंगे। हमें सब कुछ करना होगा। वास्तव में हमलोग सभी करते हैं। मान लो, जब जप-ध्यान करते हो, तो क्या करते हो? विचार के द्वारा प्रतिकूल विचारों को दूर करने का प्रयास करते हो। मन को एकाग्र करके इष्ट के चरण-कमलों में लगाने का प्रयास करते हो। मन में इष्ट-मन्त्र का जप करते हो और मूर्ति का ध्यान करते हो। इन सब कार्यों के लिये कर्म भी करना पड़ता है। तब? हमलोग एक साथ ही चारों योग कर रहे हैं। **(क्रमश:)**

सन्त समागम परम सुख

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

संत मीराबाई का पन्द्रह वर्ष की आयु में चित्तौड़ के राजकुमार भोजराज के साथ विवाह हुआ। किन्तु अल्पायु में ही पति का अचानक निधन हो गया। मीराबाई यह दारुण आघात सहन न कर सकीं। बचपन से ही वे गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मानती थीं। पति-वियोग ने उन्हें एक नई दिशा दी। ससुराल आते समय वे अपने साथ आराध्यदेव की एक छोटी मूर्ति लाई थीं। वे उस मूर्ति को स्नान करातीं, कुंकुम-अक्षत चढ़ातीं, आरती उतारतीं और पैरों में घुंघरू बाँधकर मूर्ति को लेकर नाचती रहती थीं। बाद में संतों के साथ वे भजन-कीर्तन और सत्संग भी करने लगीं। राणा विक्रमाजित् ने इसे राजमर्यादा का उल्लंघन माना और मीराबाई को रोकने की चेष्टा की। किन्तु कोई प्रभाव न देख वे सत्संग में आनेवाले संतों का अपमान करने लगे। इससे मीराबाई व्यथित हुईं, किन्तु उनके हृदय से प्रिय मोहन की मनमोहिनी मूर्ति नहीं गयी। एक दिन दुखित हो उन्होंने सुखपाल नामक ब्राह्मण के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास जी के पास एक पत्र भेजा, जिसमें सद्य: परिस्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा –

श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करू हरो सोक समुदाई।।
घर में स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई।।
बालपन ते मीरा कीन्हीं गिरिधर लाल मिताई।
सो तो आप छुटै नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई।।
मेरे मात पिता के सम हैं हरिभगत भगतनि सुखदाई।।
हमकूँ कहाँ उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई।।

गोस्वामीजी ने तुरन्त पत्र का उत्तर लिखा – सगे सम्बन्धियों द्वारा रोकना स्वाभाविक है, किन्तु भगवद्भक्ति से विमुख होना मूर्खता होगी। उन्होंने आगे लिखा —

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रज बनितनि भये मुदमंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेब्य जहाँ लौ।
अंजन कहाँ आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित,पूज्य प्रानते प्यारो।
जासो होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो।।

तुलसीदासजी के पत्र से मीराबाई का दुख हलका हो गया। संतों का जीवन ईश्वरमय होता है, उन्हें परमात्मा के सिवाय कुछ नहीं दिखता। उनसे सत्संग करने में अनन्य सुख की प्राप्ति होती है। ○○○

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१८)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

एक रूसी यात्री ने एक पुस्तक में अपना अनुभव लिखा है। यह पुस्तक मूल रुसी भाषा में है। इसका अँग्रेजी अनुवाद 'द वे ऑफ ए पिल्ग्रिम' है। १९वीं शताब्दी का एक गरीब रुसी, जिसका कोई परिवार, जमीन-जायदाद नहीं, अपंग होने से कार्य करने में असमर्थ, कंधे पर एक छोटा-सा थैला लटका कर भगवान की खोज में निकल पड़ता है। बाइबल में लिखा हुआ वाक्य "अविरत प्रार्थना करते रहो", उसके मन में दृढ़ रूप से अंकित हो गया था, परन्तु यह वाक्य उसे समझ में नहीं आता था। उसने कितने ही पादरियों से पूछा, पर उसे किसी से भी संतोषप्रद उत्तर नहीं मिला। अन्त में एक वृद्ध पादरी ने उसे प्रार्थना सिखायी। "प्रभु ईशु, मुझ पर कृपा करो" यह प्रार्थना सतत किस प्रकार करनी चाहिए, इसकी विधि बतलाई। प्रारम्भ में प्रार्थना करना कठिन लगा, पर बाद में हमेशा मन में यह प्रार्थना होने लगी। उसने वृद्ध पादरी को कहा, "अब मुझे बाईबल का यह वाक्य ठीक समझ में आ गया है कि कोई भी काम करते हुए प्रार्थना रुकनी नहीं चाहिए।" इस अविरत प्रार्थना से उस पर ईसा मसीह की ऐसी कृपा हुई कि वह प्रभु को प्राप्त कर सका। गाँधीजी प्रार्थना को मन का आहार कहते हैं। परन्तु आजकल कितने लोग मन को आहार, भोजन देते हैं? मन बेचारा इस आहार, भोजन के अभाव में दुर्बल और रोगी बन जाता है। प्रार्थना, ध्यान, भक्ति, सत्संग, स्वाध्याय, नामस्मरण आदि मन को पुष्ट करनेवाले आहार हैं, लेकिन अधिकांश लोग मन को ऐसे आहार से वंचित रखते हैं, इससे वह दुर्बल और रुग्ण हो जाता है। फिर उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि छोटी-सी भी कठिनाई के सामने वह टूट जाता है, निराश-हताश हो जाता है, आत्महत्या के मार्ग पर चल पड़ता है और सब कुछ समाप्त कर देता है। ऐसी स्थिति पैदा हो, उससे पहले मन को प्रार्थना के द्वारा पोषण देना शुरू कर देना चाहिए। बहुत देर हो जाए, उससे पहले भगवान के साथ प्रार्थना की डोर बाँध देनी चाहिए। जिस क्षण हृदय में शान्ति और सच्चा सुख पाने की इच्छा जागे, उसी क्षण भगवान से प्रार्थना आरम्भ कर देनी चाहिए।

ध्यान करो मन में, वन में और कोने में

बाहर भटकती चित्तवृत्ति को अन्त:स्थ आत्मस्वरूप में एकाग्र करना ही ध्यान है। ध्यान में व्यक्ति को अपने आत्मस्वरूप का सान्निध्य मिलता है और उतनी देर तक उसका बाह्य वस्तुओं से सम्बन्ध छूट जाता है। जब व्यक्ति किसी बड़ी विपत्ति में फँस जाए, कोई मार्ग नहीं दिख रहा हो, बाहर से सहायता के सभी द्वार बंद हो गये हों, तब वह यदि अपने अन्दर के दरवाजे को खटखटाये, तो वहाँ से उसे सही मार्ग मिल जाता है, सच्चा समाधान मिल जाता है। इस अन्दर के दरवाजे की चाबी ध्यान में है। बाइबल में कहा गया है, "खटखटाओ तो खुलेगा, माँगो तो मिलेगा।" परन्तु अधिकांश लोग इस अन्तर्द्वार को खटखटाने के बजाय बाहर ही भटकते और माँगते रहते हैं, इसलिये उन्हें वास्तविक सुख-शान्ति नहीं मिलती है।

आज अधिकांश लोग मानसिक तनाव का, मन में अशान्ति का अनुभव करते हैं। जीवन में इतनी भागदौड़ बढ़ गई है कि उन्हें सच्चा आराम या सच्ची शान्ति नहीं मिलती है। कार्य का सतत बोझ आज के मनुष्य को शारीरिक रूप से भी थका देता है। ऐसा लगता है कि चिड़चिड़ा स्वभाव, रोगी और दुर्बल शरीर, अशान्त मन और असुरक्षित जीवन, ये आधुनिक मनुष्य के सामान्य लक्षण हो गये हैं। इस स्थिति से मनुष्य को बाहर निकालने के लिये आज विश्व में योग केन्द्र, ध्यान केन्द्र शुरू हो गये हैं। विकसित देशों के धनी लोग बड़ी कीमत देकर ऐसे केन्द्रों में जाकर मानसिक शान्ति प्राप्त कर रहे हैं। ध्यान मनुष्य को प्रगाढ़ शान्ति और स्वस्थता देता है तथा आज के युग में मानसिक तनाव से मुक्त करता है। ध्यान के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "घंटेभर की ध्यानावस्था के बाद जब तुम उससे बाहर आओगे, तब तुम्हें अपने जीवन की श्रेष्ठ विश्राम की अवस्था का अनुभव होगा। वह तुम्हारे शरीर को उत्तमोत्तम आराम देगा। यही एक मात्र रास्ता है। प्रगाढ़ निद्रा भी तुम्हें ऐसा आराम नहीं देगी, प्रगाढ़ निद्रा में भी मन उछल-कूद करता है। केवल ध्यान में कुछ मिनटों में मस्तिष्क लगभग बन्द हो जाता है। केवल थोड़ी-सी प्राणशक्ति चल रही होती है। तब तुम शरीर को भूल जाते हो, उस समय तुम्हें कोई काटकर टुकड़े कर दे, तो भी पता नहीं चले, तुम्हें इस अवस्था में ऐसा आनन्द आएगा। तुम अपने आपको एकदम

हल्का-फुल्का अनुभव करोगे। ध्यान में हमें ऐसा सम्पूर्ण आराम मिलता है।'' शारीरिक और मानसिक आराम प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को और कुछ नहीं करके, कुछ समय अपने भीतर डूब जाना चाहिए। अर्थात् बाहर के वातावरण में फैली अपनी चेतना को भीतर एकाग्र करने से, किसी भी प्रकार का तनाव दूर हो जाता है।

सामान्य परिस्थिति में भी मनुष्य को प्रतिदिन प्रातः-सायंकाल नियमित ध्यान करना चाहिए। इस विषय में श्रीमाँ सारदा देवी कहती हैं, ''ध्यान और प्रार्थना करना भी बहुत आवश्यक है। कम-से-कम सुबह-शाम इसे करना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास नाव के दिशासूचक यंत्र जैसा है। सायंकाल प्रार्थना में बैठते समय, पूरे दिन अपने से अच्छे-बुरे जो काम हुये हैं, उसका विचार मनुष्य विवेक-बुद्धि से कर सकता है। अपने कार्य को करते-करते यदि तुम ध्यान नहीं करोगे, तो तुम शुभ कर रहे हो या अशुभ, यह तुम्हें कैसे पता चलेगा?'' ध्यान में आत्मनिरीक्षण होता है, मन का विश्लेषण होता है। हमारे कार्य लक्ष्य की दिशा में हो रहे हैं या नहीं, यह ज्ञात होता है, ध्यान से जागृति आती है। इसलिये मनुष्य के जीवन में ध्यान अनिवार्य है।

ध्यान से मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी सुधरता है। 'ध्यान, धर्म और साधना' नामक पुस्तक में स्वामी ब्रह्मानन्दजी कहते हैं, ''ध्यान से केवल मन में शान्ति आती है, ऐसा नहीं है, उससे शारीरिक लाभ भी होते हैं, रोग-दोष दूर होते हैं।'' शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी ध्यान आदि करना चाहिए। पाश्चात्य देशों में ध्यान का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है, इस विषय में अनेक शोध हो रहे हैं। डॉक्टरों ने परीक्षण करके देखा है कि ध्यान द्वारा हृदय के अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। ब्लड प्रेशर (रक्तचाप) स्वाभाविक हो जाता है, शरीर के अवयवों में सामंजस्य होता है। इससे मानसिक तनाव भी कम होता है। कितने लोग नियमित ध्यान के अभ्यास से दीर्घायु हो सकते हैं, इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक समझाते भी हैं।

ध्यान से बाह्य मन की गतिविधि को तो जान ही सकते हैं, साथ-साथ अवचेतन मन में स्थित वृत्तियों को भी समझ सकते हैं। अवचेतन मन में पड़े हुए जन्म-जन्मान्तर के संस्कार किस प्रकार बाह्य मन में निकल पड़ते हैं, इसकी समझ व्यक्ति केवल ध्यान के द्वारा प्राप्त कर सकता है। ऐसा ज्ञान होने पर वह इन संस्कारों के प्रभाव से शीघ्र मुक्त भी हो सकता है। मन जब प्रगाढ़ शान्ति में पहुँचता है, तब वह चेतन अवस्था से अतिचेतन अवस्था में पहुँच जाता है। वहाँ मन के गुण-धर्म बदल जाते हैं। वहाँ मन देश, काल और कारण से दूर होकर अनन्त में पहुँच जाता है। वहाँ वह परम सत्य का साक्षात्कार करता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। यह है ध्यान की सर्वोच्च स्थिति, समाधि की स्थिति। सभी इस अवस्था को शीघ्र प्राप्त नहीं कर सकते हैं, परन्तु ध्यान का नियमित कुछ समय तक अभ्यास करने से मन पर नियंत्रण हो जाता है, तब वे अवचेतन मन की मुश्किलें दूर कर सकते हैं और दैनिक जीवन में शान्ति और स्वस्थता का अनुभव कर सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि ध्यान कब करना चाहिये?

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि, ''प्रतिदिन कम-से-कम दो बार ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। उसके लिये उत्तम समय सबेरे और सायंकाल है। रात के बीत जाने से प्रभात होता है और दिन के अवसान से संध्या होती है, इस समय वातावरण अपेक्षाकृत शान्त रहता है, तब तुम्हारे शरीर में भी शान्ति चली आती है। इस प्राकृतिक स्थिति का लाभ उठाना चाहिए।'' ध्यान के लिए प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त का समय अधिक अनुकूल होता है। उस समय बाहर का वातावरण शान्त होता है। शरीर भी नींद और आराम करके स्वस्थ, ताजगी भरा और शान्त होता है। इसके अलावा राजसिक और तामसिक प्रकृति वाले लोग निद्राधीन होते हैं, क्योंकि उनकी प्रकृति देर से सोकर, देर से उठने की होती है। इसलिए वातावरण में विक्षेप करने वाले तत्त्वों का सामना नहीं करना पड़ता है। सात्त्विक प्रकृति वाले साधक, योगी ब्रह्ममुहूर्त में ईश्वर की आराधना करते हैं, इसलिये उस समय ईश्वर की ओर अभिमुख करने वाली सूक्ष्म तरंगें, प्रवाहित हो रही होती हैं, जो ध्यान में बहुत सहायक होती हैं। इसलिए ध्यान के लिए श्रेष्ठ समय ब्रह्ममुहूर्त माना जाता है। **(क्रमशः)**

समाचार-पत्रों की निन्दा और व्यर्थ बातों पर ध्यान मत दो । निष्कपट रहो और अपने कर्तव्य का पालन करो, बाकी सब ठीक हो जाएगा । सत्य की विजय अवश्यम्भावी है ।

— स्वामी विवेकानन्द

काव्य और विज्ञान समन्वय के नवाचारी : स्वामी विवेकानन्द एवं हिन्दी-भाषा काव्य पर उनका प्रभाव

दिनेश दत्त शर्मा 'वत्स'

(गतांक से आगे)

रूसों ने अपने बहुचर्चित और पुरस्कृत निबंध 'उद्योग और विज्ञान का मानव-समाज पर सुप्रभाव पड़ा या कुप्रभाव' में निष्कर्ष निकाला है कि जब तक मानव प्रकृति के आश्रय में था, सुखी था। उद्योग और विज्ञान ने लोगों को कष्ट दिया है। इसी भावना से प्रेरित होकर, 'उत्तर-प्रदेश' नामक पत्रिका जून-१९९८ के अंक में श्री हरिराम मीणा अपनी कविता 'वह आदमी एक' में लिखते हैं –

वह आदमी तीलियों की तरह
रहता है माचिस की डिब्बियों में
उसे वक्त नहीं जो तय कर सके
उसे क्या खाना चाहिए।
मशीनों का तयशुदा और पैकशुदा
खाना खाता है वह आदमी।...

पश्चिम के बौद्धिक समाज की भाँति हमारे ऋषियों ने विज्ञान को स्वाभाविक सृजन-प्रक्रिया में बाधक नहीं माना है। यह बात यजुर्वेद के 'निऋत्य चक्षुषा समीक्षामहे' मंत्र में अनुप्राणित दृष्टिकोण की है। यह आशंका निराधार ही है कि विज्ञान और तकनीक भविष्य में साहित्य सृजन के मार्ग में अवरोध खड़े कर रहे हैं। इसके विपरीत, जहाँ नए संसार के क्षितिज चौड़े हो रहे हैं, वहाँ मानवीय संकल्पों की सीमायें भी विस्तृत हो रही हैं और तदनुसार सृजन की प्रेरणायें भी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक रस स्त्रोतों में मूर्त हो रही हैं। इस प्रकार कविता और विज्ञान मित्र हो रहे हैं, जिसके लिए स्वामी विवकानन्द प्रयत्नशील थे।

हिन्दी साहित्य में सामाजिक रुचि के अनुकूल भक्ति, श्रृंगार, वीर रस की काव्य रचनायें सदैव होती रही हैं। वैज्ञानिक रुचि से सम्पन्न समाज के अनुकूल लोकप्रिय विज्ञान की गद्य पुस्तकें एवं पत्रिकायें विशेषज्ञों द्वारा लिखी जाती रही हैं। हिन्दी साहित्य के प्रमुख अंग काव्य में आधुनिक विज्ञान का प्रभाव कब और किस प्रकार प्रकट हो रहा है, यह प्रस्तुत लेख का विषय है। विज्ञान और तकनीकी युग के चरम विकास में भी काव्य सृजन में कोई आघात नहीं पहुँचा है। मानव को बौद्धिक प्रकर्ष देकर विज्ञान उसका रागात्मक बोध खंडित नहीं करता है। वरन् वह नयी विधायें प्राप्त कर और अधिक प्रेरक बन गया है।

विज्ञान प्रदत्त सामान्य ज्ञान इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पूर्णिमा को समुद्र में उठने वाले ज्वार का कारण चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल है। महाकवि दिनकर ने अपने महाकाव्य 'उर्वशी' में संवेदना और रसोद्रेक के लिए उपरोक्त तथ्य का प्रयोग कुशलता पूर्वक किया है। एक स्थल पर वे लिखते हैं –

पर तुम कहो कथा आगे की, पूर्णचन्द्र जब आया,
अचल रहा, अथवा मर्यादा छोड़, सिन्धु लहराया।

अन्य कवियों ने भी अपनी अभिव्यंजना को अलंकृत करने के लिए समुद्र और पूर्ण चन्द्र का प्रयोग प्रसंगानुसार किया है। 'आँसू' नामक अपनी काव्य कृति में महाकवि जयशंकर प्रसाद लिखते हैं –

कामना सिंधु लहराया, छवि पूरनिमा की छाई
रतनाकर बनी चमकती, मेरे शशि की परछाई।

वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा ने उस लोक के रहस्यों को प्रकट किया। आज के समाज में नारी की सक्रियता हर क्षेत्र में देखी जा रही है। बंगला भाषा से हिन्दी में अनुवादित रचनायें भी हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। 'धर्मयुग', २८ नवम्बर, १९७१ में प्रकशित और श्रीरंगनाथ राकेश द्वारा अनूदित श्री सुभाष मुखोपाध्याय की उत्कृष्ट रचना "जुलूस में देखा एक चेहरा" का निम्नलिखित उदाहरण विषयानुकूल प्रस्तुत है –

झंझा-क्षुब्ध जन-समुद्र की फेनिक चूड़ा पर
फास्फोरस की तरह प्रज्वलित होता रहा
जुलूस में देखा गया वह चेहरा।

उपरोक्त तीनों उदाहरणों में चन्द्रमा भी है और समुद्र भी है, लेकिन समाजिक परिवेश बदला हुआ होने के कारण क्षुब्ध कामना समुद्र न होकर क्षुब्ध जन समुद्र हो गया है। अन्तरिक्ष यात्रियों का कथन है कि चन्द्रतल से हमारी पृथ्वी भी बहुत सुन्दर दीखती है। इस तथ्य से प्रेरित होकर प्रस्तुत

निबन्धकार ने अपनी एक कविता में लिखा है –

क्या कहा !
पृथ्वी, चन्द्रतल से अति सुन्दर दीखती है।
चन्द्रमा भी तो सुन्दर दीखता है इस धरा से
निकट जाकर देखते हैं, भरा मुख, चेच की क्रेटरों से,
चन्द्रमा पर पहुँच कर मत भूलना तुम,
दैन्य, दुर्बलता, अभावों के क्रेटरों से
है भरा मुख इस धरा का !

आज के समाज की मनोदशा का सार्थक आकलन तो उपरोक्त काव्य रचनाओं का मुख्य विषय है ही, परन्तु विज्ञान और प्रविधि ज्ञान का प्रभाव भी अभिव्यंजना को यथार्थ सिद्ध कर रहा है। वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गए शताधिक रासायनिक तत्त्वों में से एक फास्फोरस नामक तत्त्व के रासायनिक गुण का आश्रय लेकर सौन्दर्य-वर्णन और चन्द्रमा से उसकी उपमा अनावश्यक है। परन्तु काव्य का स्थायी भाव और भावानुप्रवेश की मूल भूमि मनुष्य का राग-विराग ये दोनों वही हैं, जो आज के समाज में हैं अथवा व्यास और वाल्मीकि के समाज में थे।

साहित्य का सम्बन्ध मन नामक पदार्थ से है। विज्ञान और प्रविधि की कल्पनातीत प्रगति के बावजूद वह अब भी ईर्ष्या से जलता रहता है। पदार्थ विज्ञान के नियमों के प्रकाश में मानसिक जलन को परिभाषित करके सुकवि श्री कृष्णचन्द्र शर्मा ने मासिक कादम्बिनी के जनवरी-१९६९ के अंक में प्रकाशित अपनी निम्नलिखित काव्य पंक्तियों को रोचकता और नवीनता प्रदान की है –

फास्फोरस जलता है हवा में, सोडियम पानी में,
न हवा, न पानी में जलता है खाम ख्याली में
मिज़ाज इंसान का।

चन्द्रमा के अतिरिक्त, आकाश में चमकते तारे भी विश्वभर के मनुष्यों को बचपन से ही आकर्षित और जिज्ञासु करते रहे हैं। 'ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार' नामक इंग्लिश बाल-गीत ने आज के शिक्षित समाज में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की कोई रचना अभी तक लोकप्रिय नहीं है। कवि ने इस गीत में बालोचित जिज्ञासा भाव प्रकट करके अपनी सहज-सरल संवेदना को कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। लेकिन यह तारे झिलमिलाते क्यों है? यह रहस्य खोजना वैज्ञानिक का कार्य है, जिसको उन्होंने भी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है। रहस्य के अनावरण से कवि-हृदय कुंठित न होकर प्रसन्न हुआ है। उसने विज्ञान को भी अपने सौन्दर्य बोध से संयुक्त करके काव्य-सृजन में एक नया आयाम विकसित किया है। हिन्दी साहित्य के शलाका पुरुष 'अज्ञेय' की १९३३ ई. में प्रकाशित काव्य-पुस्तक 'भग्नदूत' के प्रथम संस्करण के पृष्ठ-११६ से उद्धृत 'अपना गान' कविता की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ हमारे निष्कर्ष की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं –

आद्र से तारों की कंपकपी
व्योम गंगा का शान्त प्रवाह।
इसी में मेघों की गर्जना
इसी में तरलित विद्युत दाह।

विज्ञान स्नातक कवि 'अज्ञेय' भली प्रकार जानते थे कि वायुमंडल में उपस्थित आर्द्रता के कारण उत्पन्न विभिन्न घनत्व की परतों से गुजरती प्रकाश किरणें अपने सीधे पथ से विचलित हो जाती हैं। इस विचलन के कारण तारों की सापेक्ष स्थिति भी परिवर्तित होने लगती है और तारे टिमटिमाते प्रतीत होते हैं।

अब तक विज्ञान और प्रविधि ने परम्परागत भारतीय समाज की जीवन-शैली पर तो असर डाला है, लेकिन जीवन-दर्शन पर नहीं। प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुसार यह जड़ प्रकृति पंचभूतों से निर्मित है, जिसका उल्लेख संत कवियों के काव्य में प्रसंगवश स्थान-स्थान पर मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास की चौपाई – **क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।।** आज के आधुनिक समाज में भी यथाप्रसंग उद्धृत की जाती है। अभी तक विज्ञान हमारी बुद्धि के स्तर पर ही समरस हो पाया है। इसलिये हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि सुमित्रानन्दन पंत सृष्टि-रचना सम्बन्धी जिज्ञासा की अभिव्यंजना करते हुए 'युगांतर' नामक अपने काव्य में लिखते हैं –

किसके बल से पंचभूत ये, सतत कर्म में तत्पर,
शाब्दित नभ, चल अनिल द्रवित जल, दीप्त अग्नि, भू उर्वर।

मानवीय चिन्तन की प्रत्येक विधा एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती है। विज्ञान के सिद्धान्त तात्कालिक दर्शन और काव्य को प्रभावित कर उसमें सदैव प्रवेश पाते रहे हैं। इसमें जहाँ एक ओर काव्य की कोमल अनुभूतियों का समावेश

होता है, शृंगारिक कल्पना होती है, वहीं दूसरी ओर उन अनुभूतियों एवं कल्पनाओं को वैज्ञानिक तथ्यों का सहारा भी मिलता है। विवेक से विज्ञान और भावना से साहित्य नियंत्रित होता है। विज्ञान तथ्य की खोज करता है और साहित्य भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वैज्ञानिक तथ्यों को प्रकट करने से भाषा में भाव प्रकाशन की क्षमता और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सामर्थ्य बढ़ती जाती है।

जीवन-दर्शन के बदलाव की सहज प्रतिध्वनि भारतीय चिन्तन से निकलती नहीं-सी दीखती। इसलिए महाकवि जयशंकर प्रसाद प्रारम्भ में प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान के प्रतीकों को साथ-साथ ही रखते हैं। अपने महाकाव्य 'कामायनी' के पृष्ठ-१५७ पर वे लिखते हैं –

झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर।
ले साथ विकल परमाणु-पुंज नभ अनिल अनल क्षिति नीर।

लेकिन प्राचीन के मोह से वे अपने को मुक्त कर लेते हैं और अपनी काव्य-पुस्तक 'लहर' के पृष्ठ-३२ पर संगृहीत कविता 'जगती की मंगलमयी उषा बन' के अष्टम पद में घोषणा करते हैं –

प्राची का पथिक चला आता,
नभ पद-पराग से भर जाता,
वे थे पुनीत परमाणु, दया ने जिससे सृष्टि बनाई थी।

विज्ञान के द्वारा उद्घाटित अणु-परमाणु विज्ञान के प्रभाव में आज के कवि परम्परागत उपमाओं को छोड़ते जा रहे हैं।

शृंगारिक एवं दार्शनिक भावप्रधान कविताओं के अतिरिक्त सामाजिक विसंगतियों से प्रेरित नयी कविता ने भी अपनी अभिव्यंजना के लिये जनसामान्य के सम्पर्क में आने वाले विज्ञान और प्रविधि के दैनन्दिनी उपकरणों को काव्य प्रतीकों के रूप में मुक्त-हृदय से प्रयोग किया है। मासिक पत्रिका कादम्बिनी के मई, १९६९ अंक के पृष्ठ-१०७ पर श्री मुकुट सक्सैना की निम्नलिखित कविता उपरोक्त तथ्य का सुन्दर उदाहरण है –

बर्फ के टुकड़ों की भाँति, बन्द हो गया हूँ मैं
स्वतंत्रता के थरमस में
शून्य के बीचोबीच रक्षित है
मेरे जीवित रहने का अधिकार लाचार।

ज्ञातव्य हो कि थर्मस के अन्दर रखे बर्फ के टुकड़ों तक बाहर की गरमी इसलिये नहीं पहुँच पाती, क्योंकि थर्मस ऐसी दोहरी दिवारों से बना होता है, जिनके मध्य से वायु निकाल कर शून्य स्थिति का निर्माण कर दिया जाता है। निर्वात-रचित शून्यता बाह्य उष्मा का अवरोधक होती है, एवं बर्फ के टुकड़े रक्षित रहते हैं।

कवि का कर्म है – संवेदना को ज्ञान के भीतर तक पहुँचाना। विज्ञान के प्रभाव से साहित्य और भी अधिक अर्थ-गर्भित हो गया है। भाषा की चुनौती सबसे बड़ी चुनौती है। प्रविधि के आल-जाल से घिरा साहित्यकार जो भाषा लिखेगा और उसको जो अर्थ देगा, उसे सामान्य मनुष्य नहीं समझेगा। जहाँ तक काव्य के रूप और कथ्य का सम्बन्ध है, वह प्रत्येक युग में बदलता रहता है।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कवि की अन्तश्चेतना बाह्य सम्पर्क में आने वाले सभी दृश्यों, वस्तुओं और व्यक्तियों के भीतर बड़ी सूक्ष्मता से प्रवेश कर गयी है। जिससे वह वस्तु को शाश्वत बिम्ब का प्रतीक बनाने में समर्थ हो गया है और जिसके आधार पर कवि की अन्त:प्रज्ञा और संवेदनशीलता को उसके शब्दों के चमत्कार और संगीत के माध्यम से देखा और सुना जा सकता है। विचार करके देखा जाए, तो विज्ञान का आज के समाज में बढ़ता हुआ प्रवेश काव्य में रूप और मुहावरे को प्रभावित कर रहा है, उसे मित्र बना रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी के काव्य और विज्ञान के समन्वय का प्रभाव परवर्तीकाल के कवियों पर पड़ा। ○○○

सन्दर्भ ग्रंथ :

१. स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, सम्पादक : स्वामी विदेहात्मानन्द, प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, ५-डिही एण्टाली रोड, कोलकाता २. विवेकानन्द एक जीवनी, लेखक – स्वामी निखिलानन्द ३. विवेकानन्द-चरित, लेखक – सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, प्रकाशक – रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर ४. 'आत्मज्ञान और विज्ञान' : आचार्य विनोबा भावे ५. 'कामायनी' – महाकवि जयशंकर प्रसाद ६. कविता – 'एक लघु अणु', श्री भवानी प्रसाद मिश्र की धर्म युग में प्रकाशित रचना ७. नहुष, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ८. कुरुक्षेत्र, श्री रामधारी सिंह दिनकर ९. गुंजन, श्री सुमित्रानन्दन पंत १०. हियहारिन, हीरानंद सच्चिदानंद वात्सायन अज्ञेय ११.'जागो फिर एक बार' – सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला १२.'कल्कि', कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह १३. 'युग बदला', डॉ. मंजु ज्योत्स्ना, कादम्बिनी, (मासिक) मई-२००२ १४. 'आँसू की पहिचान हुई', भारत भूषण अग्रवाल समकालीन साहित्य समाचार (मासिक) दिसम्बर-२००८ १५. 'हे राम तेरी माया' (अप्रकाशित पांडुलिपि) दिनेशदत्त शर्मा वत्स

लघु-वाक्यवृत्ति

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

अज्ञानं कारणं साक्षी बोधस्तेषां विभासकः।
बोधाभासो बुद्धिगतः कर्ता स्यात्पुण्य-पापयोः ।।२।।

अन्वयार्थ – अज्ञानं अज्ञान **कारणं** कारण (शरीर या उपाधिवाला है)। **बोधः** शुद्ध चैतन्य **तेषां** उनका (उपरोक्त तीनों उपाधियों का) **साक्षी** साक्षी (अर्थात्) **विभासकः** प्रकाशक (है)। **बोधाभासः** शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब **बुद्धिगतः** बुद्धि से युक्त हो जाता है, (जो अहंबोधक व्यष्टि जीवात्मा के रूप में प्रतिभात होकर) **पुण्य-पापयोः** पाप-पुण्यों का **कर्ता** कर्ता-भोक्ता अर्थात् जीव **स्यात्** बन जाता है।

भावार्थ – अज्ञान कारण (शरीर या उपाधिवाला है)। शुद्ध चैतन्य उनका (उपरोक्त तीनों उपाधियों का) साक्षी (अर्थात्) प्रकाशक (है)। शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब बुद्धि से युक्त हो जाता है (जो अहंबोधक व्यष्टि जीवात्मा के रूप में प्रतिभात होकर) पाप-पुण्यों का कर्ता-भोक्ता बन जाता है।

– टीका –

तृतीय-उपाधिम् आह – अज्ञानम् इति। अनादि-अनिर्वाच्यम् अज्ञानम् कारण-उपाधिः स्यात्। यज्ज्ञानार्थम् एतद्-उपाधि-त्रयम् उपक्षिप्तं तत् तत्र स्थितं शुद्ध-ब्रह्म-स्वरूपं निरूपयति साक्षीति। साक्षात् ईक्षते असौ साक्षी बोधः, 'आत्मानम् अन्विच्छन्', 'गुहां प्रविष्टम्' इत्यादि श्रुति-प्रसिद्धः परमार्थ-सत्यः परमानन्द-घनः प्रत्यगात्मा कूटस्थः। तेषां पूर्वोक्तानां त्रयाणाम् उपाधीनां विभासकः सत्ता-स्फूर्ति-प्रदत्वेन प्रकाशक इत्यर्थः। एवं शुद्धात्मनः स्वरूपम् उक्त्वा संसाराभिमान-वाहकस्य जीवात्मनः स्वरूपम् आह – बोधाभास इति।। स्वरूप-प्रतिबिम्बितः चिदाभासः साधिष्ठानः पुण्य-पाप-कर्मणां कर्ता स्याद्-इत्यर्थः।।

'अज्ञान' से आरम्भ होनेवाले इस वाक्य से तीसरी उपाधि के विषय में बताया जा रहा है। अनादि तथा अनिर्वाच्य अज्ञान[२] को 'कारण' उपाधि कहते हैं। जिसे जानने हेतु इन तीन उपाधियों का नाश किया जाता है, उस शुद्ध ब्रह्म-स्वरूप का 'साक्षी' आदि शब्दों के द्वारा निरूपण किया जा रहा है। जो सब कुछ सर्वदा साक्षात् देखता है, उसे 'साक्षी' कहते हैं। 'आत्मा की खोज करते हुए'[३], 'हृदय गुहा में स्थित है'[४] आदि श्रुति-वाक्यों के द्वारा उसे परमार्थ सत्य, परम आनन्दघन, अन्तरात्मा तथा कूटस्थ (अपरिवर्तनशील) बताया गया है। वह (आत्मा या ब्रह्म) उन पूर्वोक्त तीन उपाधियों का प्रकाशक अर्थात् उन्हें सत्ता तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाला है। इस प्रकार शुद्ध आत्मा का स्वरूप बताने के बाद अब वे 'बोधाभास' (या चिदाभास) आदि शब्दों के द्वारा संसार-अभिमान के वाहक – जीवात्मा का स्वरूप बताते हैं। यह प्रतिबिम्बित चैतन्य का आभास अपनी मूल सत्ता के साथ अधिष्ठित होकर (बुद्धि के माध्यम से) पुण्यों तथा पापों का कर्ता हो जाता है।।२।।

स एव संसरेत्कर्म-वशाल्लोक-द्वये सदा।
बोधाभासाच्छुद्धबोधं विविच्यादति-यत्नतः ।।३।।

अन्वयार्थ – सः वह (अर्थात् जीवात्मा या सूक्ष्म शरीर से युक्त प्रतिबिम्बित चैतन्य) **एव** ही **कर्मवशात्** कर्मों से वशीभूत होकर **सदा** निरन्तर (जन्म तथा मृत्यु से होकर) **लोकद्वये** (इहलोक तथा परलोक) दोनों लोकों में **संसरेत्** आवागमन करता रहता है। (अतः व्यक्ति को) **अतियत्नतः** परम यत्नपूर्वक **बोधाभासात्** प्रतिबिम्बित बोध (अर्थात् जीवात्मा) से **शुद्धबोधं** शुद्ध चैतन्य को **विविच्यात्** पृथक् रूप में विचार करना चाहिये।

भावार्थ – वह (सूक्ष्म शरीर से युक्त प्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् जीवात्मा) ही कर्मों से वशीभूत होकर निरन्तर (जन्म तथा मृत्यु के चक्र से होकर) (इहलोक तथा परलोक) दोनों लोकों में आवागमन करता रहता है। (अतः व्यक्ति को) परम यत्नपूर्वक प्रतिबिम्बित बोध (अर्थात् जीवात्मा) से शुद्ध चैतन्य अर्थात् ब्रह्मतत्त्व को पृथक् रूप में विचार करना चाहिये।

– टीका –

किञ्च स एव जीवात्मा प्रारब्ध-कर्मवशात् इह अमुत्र च सुख-दुःख-भोक्तृत्वादि-रूपं संसारम् अनवरतम् अनुभवति, अतो बोधाभासात् संसारिणो जीवात् शुद्धबोधं कूटस्थम् अति-प्रयत्नेन विविच्यात्–परमार्थ-सत्ये परमानन्दघने साक्षिणि अविद्या-कल्पितम् उपाधि-जातं साक्ष्यं मिथ्याभासत्वात् नास्ति एव, साक्षी एव तु परमार्थ-सत्यः केवलो विद्यते इति विवेक-दृष्ट्या शुद्धम् आत्मानं जानीयात् इत्यर्थः।।

– भावार्थ –

और भी – वही जीवात्मा प्रारब्ध कर्म[५] के वशीभूत

२. अज्ञान को अविद्या, माया अथवा प्रकृति भी कहते हैं।
३. जाबाल उपनिषद्, ६; नारद-परिव्राजक उप., ३/८७
४. कठ उपनिषद्, १/३/१

५. प्रारब्ध कर्म – कर्म तीन प्रकार के होते हैं – आगामी, संचित तथा प्रारब्ध। जन्म से मृत्यु तक किये जानेवाले और भविष्य में फल देनेवाले कर्म आगामी कहलाते हैं। पिछले जन्मों में किये हुए और भविष्य के जन्मों का कारण बननेवाले कर्मों को 'संचित' कहते हैं। वर्तमान जन्म में भोगे जा रहे पुराने कर्मों को प्रारब्ध कहते हैं।

शेष भाग पृष्ठ ९२ पर

शरणागति

स्वामी परमानन्द

स्वामी परमानन्द

(स्वामी परमानन्दजी स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। अमेरिका में अनेक वर्ष रहकर उन्होंने वेदान्त का प्रचार किया। प्रस्तुत लेख एक आध्यात्मिक जिज्ञासु को लिखे उनके उपदेशों का अंश है।)

सच्चे भक्त को सदैव अपने भीतर ईश्वरीय शक्ति का भान रहता है। उस शक्ति के बिना वह स्वयं को कुछ भी नहीं मानता, उससे पृथक् वह अपने किसी भी प्रकार के अस्तित्व की इच्छा नहीं करता। वह जानता है कि केवल जगन्माता ही सब कुछ करती हैं और उसे स्वयं किसी भी प्रकार की निन्दा-स्तुति का अधिकार नहीं है। जब तक हम माँ को नहीं भूलते, तब तक सब ठीक चलता है। अहंकार के कारण हम माँ को भूल जाते हैं । यह हमारा प्रबल शत्रु है। हमें इसका सामना कर इसे नष्ट कर देना होगा। हमें माँ से यह प्रार्थना करनी है कि हम सदैव उनके निमित्त बनकर उनकी सन्तानों की यत्किञ्चित् सेवा कर सकें। अन्यथा, इस जीवन का कोई मूल्य नहीं है। हमें केवल शुद्ध और पवित्र जीवन जीने का अधिकार है और यथासम्भव जगनमाता की सन्तानों की सेवा करनी है।

कभी-कभी यह कार्य इतना कठिन प्रतीत होता है, मानो इससे बाहर निकलने का कोई मार्ग ही न हो। किन्तु इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं रहता। अन्धकार के बादल नष्ट होते ही जीवन पुन: आशामय हो जाता है। इसलिए हमें सभी परिस्थितियों में चट्टान के समान स्थिर रहना है। चाहे कुछ भी हो जाए, किन्तु सदैव अडिग रहने का प्रयास करो। साहसी बनो और सत्य का सामना करो। यदि तुम्हारे पास इष्ट-देवता के रूप में एक महान आदर्श है, तो अपना सम्पूर्ण जीवन उसकी प्राप्ति के लिए लगा दो। इस महान आदर्श के लिए हमें अपने स्वार्थमय जीवन का त्याग करना होगा। यही एकमात्र उपाय है इसकी उपासना का। निष्कपट प्रेम और शक्ति के द्वारा ही हम भगवान की सच्ची भक्ति कर सकते हैं, दुर्बलता और मिथ्याचार से नहीं।

आगे बढ़ो। पीछे मुड़कर मत देखो कि किसकी क्या गति होती है? मेरे समान हजारों की यदि इसी क्षण मृत्यु भी हो जाए, तो भी इस बृहत् संसार को इससे कुछ फरक नहीं पड़ता। सत्य अविनाशी है और उसकी सदैव विजय होती है। सत्य की ही पूजा करो और उसके लिए अपना बलिदान दे दो। यह सदैव याद रखो कि वर्तमान जीवन पहले किए गए कर्मों और विचारों का ही परिणाम है और भविष्य वर्तमान के अनुसार होगा। इसलिए हमारा भविष्य पूरी तरह से हम पर ही निर्भर है। वर्तमान में किए गए कर्म अतीत के कर्मों को नष्ट कर देते हैं।

जिस जीवन को हमने अपने इष्ट-देवता के चरणों में समर्पित कर दिया है, उसे हमें व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए उपभोग करने का कोई अधिकार नहीं है। जिसने सचमुच अपना शरीर, मन और जीवन ईश्वर की सेवा में समर्पित कर दिया है, उसे अपनी इच्छा के बारे में बिल्कुल भी नहीं सोचना है, बल्कि अपनी इच्छा भगवत्-इच्छा में विलीन कर देनी है। यही वास्तविक आत्म-त्याग है। अन्यथा, जब तक हमारी इच्छाओं की पूर्ति होती है, तब तक तो हम भगवान की सेवा करते हैं, किन्तु जैसे ही हमारे स्वार्थ में बाधा आती है, हमारी सेवा समाप्त हो जाती है। यह शरणागति नहीं, बल्कि यह तो निरी स्वार्थपरता है। हमें दृढ़ता, साहस और विवेक-शक्ति के द्वारा इस हीन दुर्बलता पर विजय प्राप्त करनी होगी।

त्याग का पथ अतिशय दुष्कर है। ईश्वर के चरणों में पूर्ण-शरणागति अत्यन्त कठिन है। किन्तु इसके बिना आध्यात्मिक प्रगति सम्भव भी नहीं है। गुरु यदि शिष्य से तोप के गोले अथवा बाघ के सामने भी जाने के लिए कहे, तो शिष्य को निर्विचारपूर्वक उसके लिए तत्पर रहना है। इसे ही सच्ची भक्ति कहते हैं।

एक और आवश्यक बात यह है कि सांसारिक प्रलोभनों के प्रति हमारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। मन काम और कांचन से रहित होना चाहिए। ''इस मनुष्य-शरीर में शरीर का नाश होने से पहले ही जो काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ होता है, वही योगी है और वही सुखी है।'' (गीता, ५.२३) इसे अपने जीवन में उतारो और तुम तत्क्षण मुक्त हो जाओगे। अपने अहंकार को चूर कर दो और कहो, ''तृणादपि सुनीचेन'' – मैं तृण से भी तुच्छ हूँ। तब तुम देखोगे कि मन की सब अशुद्धियाँ नष्ट हो जाएँगी और तुम दिव्य हो जाओगे। तभी ईश्वर के पवित्र नाम लेने के तुम उचित अधिकारी होओगे। अहंकार ही ईश्वर और हमारे बीच बाधा है। इसका नाश कर दो और कहो, ''नाहं नाहं तूहु तूहु।'' अपनी यथार्थ शक्ति को अभिव्यक्त करो और सब दुर्बलताओं को नष्ट कर दो। यह जान लो कि दुर्बल व्यक्ति

आत्मा का साक्षात्कार कभी नहीं कर सकते।

अत: सब दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करो। जब हम दुर्बल होते हैं, तभी लोग हमारा अनुचित लाभ उठाते हैं। अपने आत्म-गौरव की रक्षा किस प्रकार करनी है, यह हमें सीखना होगा, विशेषकर जब हम लोगों के सम्पर्क में आते हैं। अपनी रक्षा के लिए हमें दुष्ट लोगों को 'फुफकारना' होगा, किन्तु दूसरों की क्षति पहुँचाने का प्रयत्न हमें कदापि नहीं करना है। दूसरों का अनिष्ट करते समय हम उन दुष्ट लोगों के निम्न स्तर पर चले जाते हैं, जिनकी हम स्वयं भर्त्सना करते हैं। इससे हमारा ही अहित होता है। अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहने के लिए हमें विरोध-प्रदर्शन का भाव दिखाना होगा, फुफकारना होगा, किन्तु कभी भी हमें हिंसा के भाव से प्रेरित नहीं होना है।

अपने विश्वास और भक्ति पर चट्टान की तरह अडिग रहो और जगन्माता को अपना हाथ दे दो। जब हम माँ का हाथ पकड़ते हैं, तब छूटने का भय रहता है, किन्तु जब वे हमारा हाथ पकड़ती हैं, तब गिरने का भय नहीं रहता। इसलिए सदैव जगन्माता पर विश्वास रखते हुए हमें सब संकटों से मुक्त हो जाना चाहिए। माँ के अलावा अन्य किसी को भी अपने पवित्र हृदय में स्थान मत दो। किसी भी प्रकार के भय, चिन्ता अथवा व्यर्थ विचार से निराश मत होओ। यह जान लो कि माँ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। ऐसा दृढ़ विश्वास रखो और स्वयं को मुक्त अनुभव करो।

सभी परिस्थितियों में माँ की इच्छा को पूर्ण होने दो, तब सब कुछ ठीक हो जाएगा। हमें 'क्यों और क्या', यह नहीं पूछना है, किन्तु शान्ति और धैर्यपूर्वक माँ की इच्छा का अनुसरण करना है। यदि दुख आता है, तो उसे माँ का आशीर्वाद मानो, कौन जानता है कि माँ किस प्रकार हमारा जीवन गढ़ेंगी? एक बात का हमें सदैव स्मरण रखना होगा कि सांसारिकता और आध्यात्मिकता – दोनों अलग मार्ग हैं, यदि एक उत्तर की ओर है, तो दूसरा दक्षिण की ओर। इसलिए संसार से कभी भी तुम न्याय की अपेक्षा नहीं कर सकते।

प्रत्येक स्थिति में हमें साहसी, शक्तिशाली और निर्भय होना है। जब दुख और बाधाएँ आएँ, तब वीर के समान कहो, "ठीक है, आने दो।" उसी क्षण सब बाधाएँ तुमसे भाग जाएँगी। यही एकमात्र मार्ग है उन पर विजय पाने का। साहसी होओ। साहसी और निर्भय होओ। निर्भयता के एक शब्द मात्र से तुममें बल आएगा। इसलिए सदैव अपने मन को साहसी और उत्साही बनाने का प्रयत्न करो।

अपने महान आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रसन्नचित्त, आनन्दमय और शक्तिशाली होना एक महान और नि:स्वार्थ कार्य है। ऐसे नि:स्वार्थपूर्वक कार्य से तुम दिनोंदिन पवित्रता और शक्ति प्राप्त करोगे। यह केवल इष्ट-देवता के निरन्तर चिन्तन और निष्कपट प्रार्थना द्वारा ही सम्भव है। हृदय से नि:सृत निष्कपट प्रार्थना का उत्तर माँ अवश्य देंगी। वे सदैव तुम्हारी रक्षा करेंगी और तुम्हें शक्ति एवं मार्गदर्शन देंगी। यदि तुम सदैव मन-प्राण से उनकी उपासना करोगे, तो क्या वे तुम्हें दुखी करेंगी? नहीं, वे ऐसा नहीं करेंगी, क्योंकि वे दयासिंधु हैं और अपनी सन्तानों को दुखी नहीं कर सकतीं। यदि दुख आता है, तो कोई भय नहीं, माँ का हृदय दुख बाँटने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

तुम पूछ सकते हो कि हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर क्यों नहीं मिलता? हम यह नहीं जान सकते। हम मात्र बालक हैं और अधिक जानने की हमारी इच्छा भी नहीं होनी चाहिए। वे अर्थात् जगन्माता ही सब जानती हैं। यह संसार उनका है और वे अपनी सन्तानों की देखभाल करती हैं। हमें इतना ही सोचना है, "मैं एक सरल बालक मात्र हूँ, उनकी सन्तानों का सेवक हूँ।" उनकी सन्तानों की नि:स्वार्थ सेवा में ही थोड़ा-बहुत सुख है। हम सदैव उनकी सेवा करने का प्रयत्न करें। किन्तु यहाँ भी एक कठिनाई है – हम जानते नहीं कि वास्तविक सेवा क्या है? हम मूर्खतावश उन्हें ही कष्ट पहुँचाते हैं, जिनकी हम सेवा करना चाहते हैं। इस प्रकार हम भूल करते हैं और दूसरों के दुख का कारण बनते हैं। उचित विवेक-शक्ति के अभाव में जीवन अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

किन्तु फिर भी हम पूर्णरूपेण उन पर ही निर्भर होने का प्रयत्न करें। यद्यपि कभी-कभी अन्धकार के घने बादल छा जाते हैं, तथापि हमें अडिग और धीर रहना है। बिना किसी भय के हमें निरन्तर आगे बढ़ना है। परिणाम क्या होगा, इसकी बिल्कुल भी परवाह मत करो। यह जान लो कि शुभकार्य का फल सदैव शुभ होता है, कभी विपरीत नहीं होता। बाहर से भले ही ऐसा न दिखे, किन्तु एकमात्र यही वास्तविक और अभीष्ट गन्तव्य मार्ग है।

जगन्माता की दिव्य इच्छा से ही हम सब परिचालित होते हैं। उन्हीं पर पूर्णरूपेण निर्भर होकर हमें निष्ठापूर्वक कहना चाहिए, "तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।" हम यह जानते तो हैं, किन्तु कभी-कभी मन में व्यग्रता आ जाती है। हमें इसे दूर करना होगा। हमें दृढ़तापूर्वक जीवन जीना है। हमें पवित्रता और चारित्र्य-शक्ति चाहिए, तभी हम सभी कठिनाइयों और संकटों का निर्भयतापूर्वक सामना कर सकेंगे। किससे भय है

हमें? हम जगन्माता की सन्तान हैं, हमारी माता पूरे ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी हैं, यह समस्त संसार हमारा है। इस प्रकार की जीवन्त श्रद्धा होनी चाहिए।

अपने भीतर के बल, शक्ति, पवित्रता और निष्कपट प्रेम को अभिव्यक्त करो, ये तुम्हारे जन्मसिद्ध अधिकार हैं। उठो, साहसपूर्वक उठो। तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है। सब अन्धविश्वासों और अपवित्रताओं को उखाड़ कर फेंक दो। वे तुममें नहीं हैं और न ही कभी तुममें थे। यह जान लो कि तुम मुक्त हो, तुममें कोई बन्धन नहीं है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मत्सर, नाम-यश इत्यादि हीन भावनाएँ अन्धविश्वास के अतिरिक्ति और कुछ नहीं हैं। तुम्हारा इनसे क्या सम्बन्ध? इन सबको निर्दयतापूर्वक ज्ञानसागर में डुबो दो। अविलम्ब इसे करो और मुक्त हो जाओ। तुम जहाँ कहीं भी जाओ, तुम मुक्त हो। तुम्हें कोई बन्धन नहीं, कोई भय नहीं। मूर्ख लोगों को बकवास करने दो। वे दया के पात्र हैं, वे कुछ श्रेष्ठतर नहीं जानते। आगे बढ़ो और पीछे मुड़कर मत देखो कि तुम्हारे पीछे क्या हो रहा है। लोगों को बोलने दो, वे जो कुछ करना चाहें, उन्हें करने दो। तुम कुछ मत कहो, किन्तु नि:शब्द निरन्तर चलते रहो।

सभी तेरी इच्छा है माँ, इच्छामयी तारा तुम्हीं।
तुम्हारा कर्म तुम्हीं करती माँ, लोग कहते करते हमीं।।
फँसाती कीच में हाथी, लंघाती पंगु को गिरि।
देती किसी को ब्रह्मपद माँ, करती किसी को अधोगामी ।।
मैं हूँ यंत्र तुम हो यंत्री, मैं हूँ घर तुम हो गृहिणी।
मैं हूँ रथ तुम हो रथी माँ, चलता जैसा चलाती माँ।।

यही यथार्थ ज्ञान है। इसे प्राप्त करने के बाद हम मुक्त हो जाते हैं। मिथ्या अभिमान अनर्थकारी होता है। यह मानवता का घोर शत्रु है। इसका सर्वथा नाश कर दो। तब ज्ञानसूर्य प्रकाशित होगा। सोचो, "मैं कौन हूँ? मैं क्यों किसी से झगड़ा-विवाद करूँ? मैं ईश्वर की सन्तान हूँ। मैं निन्दा-स्तुति, सुख-दुख-विषाद से मुक्त हूँ।" यही मुक्ति है। केवल मूर्ख लोग ही चाहते हैं कि दूसरे लोग उन्हें महान समझें। वे दूसरों से प्रशंसा की अपेक्षा करते हैं। यदि उन्हें प्रशंसा नहीं मिलती, तो वे दुखी और निराश हो जाते हैं। मूर्खता है यह! क्या तुम इन व्यर्थ बातों की परवाह करते हो? कुछ मिनटों का यह मूर्खपूर्ण नाटक! इस संसार में वास्तविकता है ही क्या? हमें इस प्रकार विवेक करना होगा। दास के समान जीने में क्या रखा है?

हम क्यों अपनी इन्द्रियों और वासनाओं के वशीभूत हों? हमें उनका सामना करना है और उन पर विजय प्राप्त करनी है। हमारे सम्मुख बहुत कार्य है। यद्यपि कार्य कठिन है, तो भी इसे पूर्ण करना है। इस शरीर से मुक्त होने के पहले इस कार्य को पूर्ण करना है। यदि हम उपेक्षा अथवा भय के कारण नहीं करेंगे, तो अनेक जन्मों में अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ेंगी। ईश्वर की कृपा से मार्ग प्रशस्त है। निर्भय, निरन्तर और उत्साहपूर्वक चलो। बोझ उठाकर चलना अत्यन्त कठिन है और उससे भी कठिनतर उसके लिए, जो यह बोझ हल्का करता है। हम गुरु का ऋण कैसे चुका सकते हैं? केवल उनके उपदेशों के अनुसार शुद्ध और पवित्र जीवन यापन कर हम उनका ऋण चुका सकते हैं। इसके अलावा और कोई मार्ग नहीं है। भौतिक सुविधा और सहायता तो नगण्य हैं।

आलस्य को त्याग कर आगे बढ़ो। यह जान लो कि तुम शरीर नहीं हो, जड़ नहीं हो, किन्तु दिव्य, शुद्ध और निर्विकार आत्मा हो। इस महान आदर्श को अपने मन में सदैव दृढ़ कर दो, तब किसी भी परिस्थिति में तुम्हारी शान्ति विचलित नहीं होगी।

माँ सदैव तुम्हारी रक्षा करेंगी। उनकी कृपा के बिना कोई भी किसी प्रकार का सत्कर्म नहीं कर सकता। यह हम कभी भी न भूलें। तब हम सदैव सुरक्षित रहेंगे। मनुष्य तभी संकट में फँसता है, जब वह जगन्माता को भूलकर सांसारिक वस्तुओं के पीछे भागता है और उन्हें ही श्रेष्ठ और वास्तविक मानने लगता है। माँ की कृपा से ही ज्ञान का प्रकाश और सांसारिक सुखों के प्रति अनासक्ति प्राप्त होती है। हम चाहे सुख में हों अथवा दुख में, किन्तु जब तक हम जीवित हैं, माँ की दिव्य महिमा का गान करें। उनके ही विचारों में हम मग्न रहें, उनके ही दिव्य प्रेम में मत्त हो जाएँ। तब संसार तुरन्त अपने-आप हमारे मन से दूर हो जाएगा। लोगों की निन्दा-स्तुति, राग-द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि संकुचित बातों में क्या रखा है? इन सब को भूलकर हृदयपूर्वक प्रेम और भक्ति से हम माँ की ही आराधना करें।

माँ हमारे सर्वत्र शान्ति और आशीर्वाद बिखेर देंगी। हम उनकी प्रिय सन्तान हैं और वे अपने मातृस्नेह से हमें कभी भी वंचित नहीं करेंगी। सुख-दुख की तरंगें आएँगी और जाएँगी, वे हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए कल्याणकारी हैं। दृढ़ रहो। चाहे कुछ भी हो जाए, किन्तु तुम चट्टान के समान दृढ़ रहो। अपने इष्ट-देवता और स्वयं में विश्वास रखो। विश्वास और शरणागति के द्वारा ही सत्य का साक्षात्कार होता है, व्यर्थ चर्चाओं और तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा नहीं।

सांसारिक मित्र और शत्रु का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है। माँ ही हमारे लिए सब कुछ हैं। वे ही हमारी सर्वस्व हैं।

हमारा प्रत्येक क्षण उन्हीं की भक्ति में व्यतीत होना चाहिए, बाकी अच्छा-बुरा जो कुछ भी है, सब मिथ्या, भ्रम, माया और अज्ञान है। सत्य एकमेवाद्वितीय है और वह सत्य केवल जगन्माता ही हैं। वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी हैं। उनकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। वे हमारी और सबकी माँ हैं। जब वे हमारे पास हैं, तब कोई भी अमंगल हमारा स्पर्श नहीं कर सकता। विश्वास, बल और साहस का अवलम्बन लो। यह जान लो कि माँ सब कुछ सम्भव कर सकती हैं। जो उनके चरणाश्रित है, उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। वह निर्भय हो जाता है।

माँ से प्रार्थना करो और निष्कपट भाव से उनके चरणों में शरणागत हो जाओ। तब भय, चिन्ता इत्यादि सभी दुर्बल विचार नष्ट हो जाएँगे। दृढ़तापूर्वक कहो, "जय माँ आनन्दमयी", तब सब पाप नष्ट हो जाएँगे। वे अशुभ का नाश करती हैं। अपनी अबोध और योग्य सन्तानें, जो उनके अलावा कुछ नहीं जानतीं, उनकी वे सदैव रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त संसार में और क्या कहना-सुनना है? माँ के दिव्य गुणगान के अलावा सब कुछ वृथा और मिथ्या है। वे ही हमारे अस्तित्व, शाश्वत शान्ति और आनन्द का स्रोत हैं।

माँ की गोद में ही हम चिरशान्ति प्राप्त करें। वे अपनी सन्तानों की देखभाल करना भलीभाँति जानती हैं। बालक जब तक माँ की गोद में है, तब तक उसे कोई भय नहीं है। माँ ही सर्वस्व, एकमेव और अद्वितीय हैं। उनके पवित्र दिव्य चरणों के अलावा हमें और किसकी पूजा करनी है? अन्य सब कुछ छोड़ दो। बाकी सब बातें हमारे मन से निकल जाएँ। तब क्या कोई अमंगल सम्भव होगा? जब हमारा सम्पूर्ण हृदय माँ की सत्ता से पूर्ण हो जाएगा, तब क्या भय, चिन्ता और व्यग्रता हमें विचलित कर सकेंगे?

वह भजन तुम्हें याद है, जिसमें कहा गया है कि इस संसार में जो परमानन्दमयी माँ को जानता है, वही सर्वोच्च आनन्द में है। उसके लिए विधि-अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं को पवित्र करने के लिए तीर्थस्थानों में नहीं जाता। वह अपनी आनन्दमयी माँ के अलावा और कुछ भी नहीं सुनता। वह माँ की इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी में भी विश्वास नहीं करता। इस प्रकार जिसने माँ के चरणों को ही अपना सर्वस्व बना लिया है, उसे जगत अनायास विस्मृत हो जाता है और एकमात्र वही भवसागर को पार करता है। उसके लिए कोई भय नहीं रहता। वह संसार की निन्दा-स्तुति के प्रति उदासीन रहता है, किन्तु सदैव माँ के नाम का अमृतपान कर मत्त रहता है।

माँ ही हमारे जीवन का लक्ष्य हैं। वे ही शान्ति और विश्राम का स्थान हैं। उनसे प्रार्थना करो और केवल उन्हीं का चिन्तन करो। वे ही हमारी यथार्थ रक्षा करने वाली हैं। वे ही सब सुख और आनन्द का मूल हैं। उनके दिव्य प्रेमसागर में गहरी डुबकी लगाकर हम मत्त हो जाएँ। तब यह संसार अविलम्ब हमारे मन से दूर हो जाएगा। उनसे पृथक् जो कुछ भी है, वह क्षणमात्र में विस्मृत हो जाएगा – "जय माँ आनन्दमयी।" उनकी उपस्थिति में सब भय समाप्त हो जाएँगे और सब कुछ आनन्दमय हो जाएगा।

छोटे बालक के समान माँ से प्रार्थना करो। वे तुम्हारी रक्षा करेंगी। हम सब उनकी सन्तान हैं। हम क्यों किसी से भयभीत हों? माँ हमारी रक्षा करेंगी। हमारा कर्तव्य है कि संसार के इस दुखमय कोलाहल में उन्हें न भूलें। इससे अधिक और क्या कहूँ कि हम सभी अवस्थाओं में सदैव जगन्माता की भक्ति करें। इस जीवन में केवल यही करणीय है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई महानतर अथवा श्रेष्ठतर कार्य नहीं है।

माँ से प्रार्थना करो, "माँ, तुम्हारे चरणों में मुझे सच्चा प्रेम दो। मैं और कुछ नहीं चाहता। अन्य सब कुछ मुझसे ले लो, केवल तुम्हारे चरणों में पवित्र प्रेम दो।" दिन-रात प्रार्थना करो। शुद्धाभक्ति और पवित्र प्रेम के लिए रोओ। इसे ही सच्ची भक्ति कहते हैं। इस महान भक्ति में स्वयं को लीन कर दो। तब संसार तुम्हारे मन से दूर हो जाएगा और तुम सदैव शान्ति और आनन्द में रहोगे।

यह याद रखो कि सब कुछ माँ की इच्छा से ही होता है। वे अपनी इच्छा से कुछ भी कर सकती हैं। वे असम्भव को भी सम्भव बना सकती हैं। उनकी महिमा को कौन जानता है? उनकी महिमा का गान कौन कर सकता है? हमें केवल अपने अहंकार का त्याग करना है और कहना है, "नाहं नाहं, तूहु तूहु। तुम्हीं सबकुछ हो । मुझे केवल तुम्हारे चरणों में सच्चा प्रेम दो, जिससे मैं तुम्हें कभी भी न भूलुं। माँ तुम्हारा नाम कितना मधुर है, मुझे तुम्हारे नाम में अपार प्रेम और श्रद्धा दो। माँ, मुझे अपनी गोद में ले लो, मैं यहाँ रहना नहीं चाहता, यह मेरा घर नहीं है। तुम हीं मेरा घर हो, मेरी शरण हो। मुझे तुम्हारे पास आने दो। तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो। मैं सत्य, पवित्रता, श्रद्धा और नि:स्वार्थपूर्वक इस कर्तव्य का पालन करूँ। तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो। हमें शक्ति दो, प्रकाश दो। हम सत्य और निष्ठापूर्वक कह सकें, तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।"

माँ हमें शान्ति और आशीर्वाद दो। ○○○

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

सुखस्य चाऽनागमापयिनोऽपरतंत्रस्यात्मस्वभाव-त्वात्तस्याऽनवबोधः पिधानम्। अतस्तस्योच्छित्तावशेष-पुरुषार्थ परिसमाप्तिः। अज्ञाननिवृत्तेश्च सम्यग्ज्ञानस्वरूप-लाभमात्रहेतुत्वात्तदुपादानम्।

अज्ञान केवल अनर्थ का हेतु ही नहीं है, अपितु यह स्वप्रकाश आत्मस्वरूप अपरोक्ष सुख को भी तिरोहित कर देता है। अत: निरतिशय सुख सम्यग् ज्ञान से ही सम्भव है।

आगमापायी : उत्पत्तिविनाशशील

आत्मसुख : यह उत्पत्तिविनाश रहित है, क्योंकि किसी भी वस्तु पर निर्भर न होने के कारण यह सुख अपरतन्त्र है, अर्थात् किसी कारण के अधीन नहीं है, क्योंकि यह आत्मस्वभाव है। इस आत्मा के स्वरूपभूत आनन्द की प्रतीति होनी चाहिए, पर क्यों नहीं होती? ऐसा सुखविषयक अज्ञान के द्वारा आवृत होने के कारण होता है।

पिधायक : अज्ञान उसका आवरक है, तिरोधायक है।

अतएव उस अज्ञान का अत्यन्त उच्छेद या विनाश होने पर कुछ करणीय नहीं रहता।

अवशेष पुरुषार्थपरिसमाप्ति : यह मोक्षशास्त्र होने के कारण मोक्ष ही अर्थ अर्थात् पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ की परिसमाप्ति होने से और कुछ नहीं बचता।

परित: सम्यग्रूपेण आप्ति प्राप्ति।

शंका : अशेष अज्ञान की निवृत्ति तो कर्म-उपासना द्वारा ही होगी।

उत्तर – अज्ञान निवृत्ति का सम्यग् ज्ञान स्वरूप-लाभ मात्र ही हेतु है। 'रज्ज्वारोपित सर्पोऽयं घण्टाघोषन्न नश्यति'। अत: जिज्ञासु को ज्ञानलाभ का ही प्रयत्न करना चाहिए।

सम्यक् : केवल ज्ञान से। उपासना-ज्ञान, कर्म-ज्ञान आदि विभिन्न प्रकार के ज्ञानों से नहीं।

स्वरूपलाभ : इसके द्वारा अन्य ज्ञानाभासों का निराकरण किया गया।

मात्र : अन्य किसी कर्म की अपेक्षा नहीं, केवल ज्ञान। (कर्म की अपेक्षा केवल चित्तशुद्धि के लिये 'सर्वापेक्षा', ब्र. सू.)

अशेषाऽनर्थहेत्वात्माऽनवबोधविषयस्य चाऽनागमिक-प्रत्यक्षादिलौकिकप्रमाणाविषयत्वाद्वेदान्तागमवाक्यादेव सम्यग्ज्ञानम्।

आत्मा अज्ञान का आश्रय और विषय दोनों है। (संक्षेप शारीरक)

आगमिक : वेदान्तशास्त्रवाक्यजन्य। प्रत्यक्ष साक्षात्कार अनागमिक - शास्त्रवाक्य अनुत्पन्न। चक्षु आदि द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण से घट-पटादि का ज्ञान होता है, लेकिन आत्मा अनागमिक यानी प्रत्यक्ष या लौकिक प्रमाण द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो सकती। याज्ञवल्क्य ने पूछा था – 'त्व तु औपनिषदं पुरुषं प्रच्छामि।' अत: उपनिषद ही पढ़नी होगी।

आत्मा किसी भी प्रमाण का विषय नहीं हो सकती। आत्मा रूप-रसादिरहित होने से प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो सकती। अनुमान के लिए लिंग या चिह्न आवश्यक है, जो आत्मा नहीं है, अत: आत्मा अनुमान का विषय नहीं हो सकती। अनुपलब्धि प्रमाण – आत्मा अभाव रूप नहीं है।

आत्मा जो अज्ञान का विषय है, वह प्रत्यक्ष, अनुमानादि अनागमिक प्रमाणों से नहीं जानी जा सकती, क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष के विषय रूप-रसादि तथा अनुमान के लिंगादि नहीं हैं।

वेदान्त आगम है। प्रामाण्य सूचना के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: आत्मा उपनिषदेकगम्य है।

आगम : मीमांसक वेदान्त की निन्दा करते हैं, क्योंकि जो वाक्य कर्म का विधान नहीं करते, वे उनके अनुसार व्यर्थ हैं। जैसे –'तत्त्वमसि'। इसमें कर्म का विधान नहीं है। वे कहते हैं – वेदोसरा-वेदान्त:। वेदान्त वेदों की ऊसर भूमि है। इसका निराकरण करने के लिए आगम शब्द का प्रयोग किया है। कर्मशेषतया नहीं, किन्तु वेदान्त-वाक्य, स्वतंत्र रूप से, एकमात्र वाक्यमात्र से, ज्ञान के प्रमाण हैं। ''आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यं ....'' इस मीमांसा वाक्य का निराकरण करने के लिए 'आगम' शब्द का प्रयोग किया गया है। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२६)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों की सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंगटन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में की है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

एक अविस्मरणीय संन्यासी – स्वामी प्रणवात्मानन्द

पवित्र गंगा नदी और बंगाल की खाड़ी के संगम स्थल को 'गंगासागर' कहा जाता है। यह भारत का बहुत पवित्र स्थल है। वर्ष में एक बार, शीतऋतु में एक शुभ दिन वहाँ पर विशाल मेला लगता है। भारत में इसे 'गंगासागर मेला' कहते हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष से लाखों तीर्थयात्री संगम-स्थल में डुबकी लगाने के लिए गंगासागर मेला में आते हैं। लोग इस दृढ़ विश्वास, श्रद्धा से आते हैं कि यहाँ स्नान करने से वे निष्पाप और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जायेंगे।

तीर्थयात्रियों और पवित्र स्त्री-पुरुषों के अतिरिक्त अनेक व्यापारी भी विविध प्रकार की वस्तुएँ बेचने के लिए वहाँ आते हैं। इसके सिवाय कुछ धोखेबाज एवं धूर्त व्यक्ति इन सरल और भोले-भाले तीर्थयात्रियों को ठगने के लिए आते हैं।

हिन्दू परम्परानुसार ब्राह्मण को दूध देनेवाली गाय का दान करने से बहुत पुण्य मिलता है। कई वर्ष पहले ब्राह्मण जैसा जनेऊ पहने एक धूर्त मेले में आया। वह अपना एक सहयोगी और एक दूध देनेवाली गाय को भी अपने साथ लाया था ।

उसका सहयोगी उच्च स्वर से आने-जानेवाले सभी तीर्थयात्रियों को सम्बोधित कर चिल्ला रहा था, ''मित्रो, पुण्य कमाने और स्वर्ग जाने का ऐसा अवसर हाथ से न जाने दें। कृपया इस गाय को खरीद कर इन पूज्य ब्राह्मण को दान करें। इस गाय का मूल्य केवल पाँच रुपये है।'' साधारणत: अच्छी दूध देनेवाली गाय का मूल्य उस समय कम-से-कम दो सौ रुपये था। कुछ भोले-भाले तीर्थयात्री उस गाय के लिए पाँच रुपये देकर उसे ब्राह्मण को दान कर देते थे। वही गाय पुन: अन्य तीर्थयात्रियों को बेच दी जाती थी और दानरूप में पुन: ब्राह्मण को मिल जाती। इस प्रकार वह धूर्त तेजी से रुपये कमा रहा था।

एक संन्यासी दूर से इस घटना को देख रहे थे और उन्होंने उस धूर्त को सबक सिखाना चाहा। उन्होंने अपने एक सहयोगी को गाय खरीदने के लिए कहा। उसके बाद वे गाय को अपने पीछे-पीछे खींचते शीघ्रता से आगे चलने लगे। धूर्त इस विपरीत प्रकार की घटना से भयभीत हो गया। उसका सहयोगी संन्यासी के पीछे दौड़ा और चिल्लाया, ''महाराज, आप क्यों गाय को साथ लेकर चले जा रहे हैं? क्या आप गाय ब्राह्मण को दान करना नहीं चाहते? क्या आप पुण्य कमाना और स्वर्ग जाना नहीं चाहते?''

संन्यासी ने हँसते हुए उत्तर दिया, ''नहीं, मैं पुण्य कमाना और स्वर्ग जाना नहीं चाहता। मैं इस गाय को किसी को दान देना भी नहीं चाहता। मुझे ही इस गाय की आवश्यकता है।''

इसी बीच ब्राह्मण दौड़ता हुआ आया और संन्यासी से दुखपूर्वक कहा, ''महाराज, मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, यद्यपि मेरा व्यवहार ब्राह्मण के जैसा नहीं हैं। मैं बहुत ही निर्धन हूँ और मेरी जीविका का यही एकमात्र साधन है। मैं निकट के गाँव में रहता हूँ। मेला के समय मैं इस गलत ढंग से तीर्थयात्रियों से कुछ रुपये कमाता हूँ। इस प्रकार मैं अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ। इस गाय को मत ले जाईये। मेरे पास यही एक गाय है।

संन्यासी को निर्धन ब्राह्मण के प्रति दया आ गयी। उन्होंने उसकी गाय वापस कर दी। वे श्रीरामकृष्ण संघ के संन्यासी थे। उनका नाम स्वामी प्रणवात्मानन्द (१९०४-१९७५) था। उन्हें 'पशुपति महाराज' के नाम से जाना जाता था।

जैसाकि उपरोक्त घटना से स्पष्ट है कि महाराज बहुत ही मनोरंजक और विनोदी स्वाभाव के थे। वे बड़े दयालु, शुद्धचित्त और भगवद्भक्त थे। सदैव प्रसन्न रहना उनका विशेष गुण था। वे उत्कृष्ट कहानीकार थे। उनकी कहानियाँ आध्यात्मिक होती थीं, लेकिन इतनी मनोरंजक होती थीं कि श्रोताओं को हँसते-हँसते पेट मे दर्द हो जाता था।

वे प्राय: हिमालय तथा अन्य स्थानों की अपनी तीर्थयात्रायों के विषय में वार्तालाप करते थे। वे कई वर्षो तक गाँव-गाँव में जाकर श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं उपदेश का चलचित्र दिखाते थे। उनकी बहुत इच्छा थी कि ग्रामीण

जनता श्रीरामकृष्ण के विषय में जानें और उनके उपदेशों से लाभ उठाएँ।

वे मिट्टी से मूर्ति बनाना बहुत अच्छे ढंग से जानते थे। वे प्रतिवर्ष शिलाँग आश्रम की दुर्गापूजा के लिए माँ दुगाँ की मिट्टी की बहुत सुन्दर मूर्ति बनाते थे। प्राचीन परम्परानुसार पूजा के बाद मूर्ति-विसर्जन स्थानीय नदी में किया जाता था। इसलिए प्रतिवर्ष नयी मूर्ति बनानी पड़ती थी। स्वामी प्रणवात्मानन्द महाराज जब तक शरीर से सक्षम थे, तब तक प्रतिवर्ष शिलाँग आश्रम में आकर बड़े प्रेम से माँ दुर्गा की मूर्ति बनाते थे।

महाराज पूजा के लगभग दो माह पूर्व शिलाँग आश्रम में आ जाते और 'शनी ठाकुर' की सहायता से मूर्ति बनाने लगते। मूर्ति को रंग करने के बाद उसे सुन्दर साड़ी पहनाकर आभूषणों से सजाया जाता था। महाराज के निर्देशन में मैं शिलाँग आश्रम के अन्य ब्रह्मचारियों के साथ मूर्ति को सुसज्जित करता था।

प्रणवात्मानन्द महाराज पूजा-अनुष्ठान में दक्ष थे। उन्होंने कुछ ब्रह्मचारियों को माँ दुर्गा की विस्तृत पूजा का प्रशिक्षण दिया था । पूजा लगातार पाँच दिनों तक होती थी। वे पूजा में तन्त्रधारक होते थे और ब्रह्मचारियों को निर्देश देते रहते थे।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि जब पुजारी आवाहन मन्त्र का उच्चारण करते हैं, तब देवता मूर्ति में आविर्भूत हो जाते हैं। प्रत्येक दुर्गापूजा में प्रणवात्मानन्द महाराज यह निश्चित होना चाहते थे कि माँ दुर्गा का मूर्ति में आर्विभाव हुआ है।

माँ दुर्गा की मूर्ति में दस हाथ होते हैं। पूजा के समय ब्रह्मचारी को इन दसों हाथों में से एक में सुगन्धित चन्दनयुक्त फूल चढ़ाना होता है। स्वामी प्रणवात्मानन्द अपने मन में कहते, ''यदि ब्रह्मचारी माँ दुर्गा के उस हाथ में फूल चढ़ाएगा, तो मैं समझूँगा कि माँ दुर्गा का मूर्ति में आविर्भाव हुआ है।'' ब्रह्मचारी ठीक उसी हाथ में ही फूल चढ़ाता था। इससे महाराज को १००% विश्वास हो जाता था कि माँ दुर्गा आयी हैं और अपनी पूजा स्वीकार कर रही हैं।

परम्परानुसार उपासक पूजा के अन्तिम दिन माँ की श्रद्धा से विदाई करता है और पुन: अगले वर्ष अपने दिव्य धाम से आकर पूजा स्वीकार करने की प्रार्थना करता है।

विर्सजन के समय प्रणवात्मानन्द महाराज तीव्र आध्यात्मिक भाव से अभिभूत हो जाते और उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती। एक बालक के समान वे भी नहीं चाहते थे कि उनको छोड़कर माँ दुर्गा चली जायें।

संघ के न्यासियों ने कई बार उनसे संघ के किसी आश्रम का प्रभार लेने के लिये कहा। एक बार वे कोन्टई आश्रम के अध्यक्ष बनाये गये। लेकिन कुछ वर्षों बाद उन्होंने उस उत्तरदायित्व से मुक्त करने के लिए आग्रह किया। क्योंकि उन्हें लगा कि जन-साधारण में श्रीरामकृष्ण के सन्देशों का प्रचार करना चाहिए। अत: तत्कालीन महासचिव स्वामी माधवानन्द जी से आशीर्वाद लेकर वे श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं उपदेशों का चलचित्र बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाने लगे। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कार्य कर सकें, इसलिये उन्होंने हिन्दी भाषा भी सीखी। उन्होंने यह कार्य कई वर्ष वृद्ध होने और गठिया से रोगग्रस्त होने तक किया। उसके बाद संघ के न्यासियों ने उन्हें गोहाटी आश्रम का अध्यक्ष बना दिया।

जब वे गोहाटी में थे, तब एक रोचक घटना घटी। एक सज्जन आश्रम में आये। वे स्वामी प्रणवात्मानन्द से एकान्त में बात करना चाहते थे। उस समय महाराज गठिया के तीव्र आक्रमण से पूर्णरूपेण शय्याशायी हो गए थे। उन सज्जन को बताया गया कि महाराज से वार्तालाप करना अभी सम्भव नहीं है। लेकिन वे सज्जन उदास थे एवं प्रणवात्मानन्दजी से बात करना चाहते थे। अन्तत: संन्यासियों ने उन सज्जन को महाराज की अनुमति से उनके शयनकक्ष में जाकर वार्तालाप करने की अनुमति प्रदान कर दी।

महाराज को प्रणाम करने के बाद उन सज्जन ने कहा, ''महाराज, मेरी बड़ी गम्भीर पारिवारिक समस्या है। इसलिये मैं आपसे एकान्त में बात करना चाहता था। मेरी एकलौती पुत्री लगता है कि प्रेतात्मा के आवेश से ग्रसित है। यद्यपि मैंने ऐसी अनेक बातें सुनी थीं, लेकिन कभी इस पर विश्वास नहीं किया कि वास्तव में किसी पर प्रेतात्मा का आवेश आ सकता है। लेकिन अब मैं अविश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि यह घटना मेरी ही पुत्री के साथ हुई है।

''जब से उस पर प्रेतात्मा का आवेश हुआ है, तब से वह बिलकुल भिन्न व्यक्ति हो गयी है। एक दिन उस प्रेतात्मा ने मेरी पत्नी से कहा कि वह उसको स्नान कराये और स्नान के पहले उसके केश में सुगन्धित जवाकुसुम का तेल लगाये। जब वह कार्य हो गया, तो प्रेतात्मा ने मेरी पत्नी से कहा, 'हमें दूसरे लोकों में भोग करने की इच्छाएँ होती हैं,

लेकिन हम लोग उनकी तृप्ति नहीं कर सकते। नया शरीर मिलने से बहुत अच्छा लग रहा है, क्योंकि मैं अब अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकती हूँ।'

''प्रेतात्मा प्रतिदिन एक विशेष प्रकार का व्यंजन खाने की माँग करती है और जब तक हम उसे नहीं दे देते, वह बहुत अशान्त और क्रोधित हो जाती है। प्रेतात्मा को समय का अलौकिक ज्ञान है। यदि वह कहती है कि 'दोपहर १.०० बजे मुझे भोजन देना' और हम आधा घण्टा पूर्व भोजन ले जाते हैं, तो वह कहती है, 'भोजन अभी क्यों लाये हो? अभी केवल १२:३० बजे हैं। भोजन वापस ले जाओ। मैं १ बजे से पूर्व नहीं खाऊँगी।' कमरे में कोई घड़ी नहीं है, फिर भी प्रेतात्मा को सही समय का ज्ञान है।

''लेकिन महाराज, मेरा आपसे मिलने का मुख्य कारण यह है कि वह प्रेतात्मा बार-बार कहती है, 'मुझे बेलूड़ मठ ले चलो !' लगता है कि प्रेतात्मा को बेलूड़ मठ से प्रेम है। इसलिये हमने सोचा कि आप रामकृष्ण संघ के एक संन्यासी हैं, कदाचित् वह आपकी बात मान जाये और मेरी पुत्री को छोड़ दे।''

स्वामी प्रणवात्मानन्द उनके प्रति दयार्द्र हो गए। पैरों के भयानक दर्द, जिसने उनको अस्थायी रूप से अपंग जैसा बना दिया था, इसके बावजूद वे उस सज्जन के घर जाने के लिए सहमत हो गये। महाराज को कुछ संन्यासियों ने मिलकर शय्या से उठाया और गाड़ी में बैठाया। जब महाराज उस सज्जन के घर पहुँचे तो उन्होंने महाराज को प्रेतात्माग्रस्त लड़की के कमरे में ले जाकर बैठने में सहायता की। जैसे ही उस लड़की ने महाराज को देखा, उसने महाराज से कहा, ''मुझे बेलूड़ मठ ले चलिए। मैं वहाँ रहना चाहती हूँ।''

प्रणवात्मानन्दजी ने कहा, ''बेलूड़ मठ में केवल संन्यासी रहते हैं। तुम लड़की हो। तुम वहाँ नहीं रह सकती !''

लड़की ने एक छोटे बच्चे जैसा कहा, ''यदि वे लोग मुझे वहाँ नहीं रहने देंगे, तो मैं गंगा नदी में कूद जाऊँगी। (प्रेतात्मा को कैसे ज्ञात हुआ कि बेलूड़ मठ गंगा नदी के तट पर है। इसकी व्याख्या करना कठिन है।) तत्पश्चात् संन्यासी गण मुझे जल से बाहर निकालेंगे और मुझे मठ में रहने देंगे।''

स्वामी प्रणवात्मानन्द ने कहा, ''क्षमा करो । ऐसा करना उचित नहीं होगा । मठ केवल संन्यासियों के लिए है, वहाँ कोई लड़की नहीं रह सकती।'' महाराज ने आगे कहा, ''तुम इस लड़की को क्यों नहीं छोड़ देती? मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मैं तुम्हारी मुक्ति के लिए श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करूँगा।''

इसके पश्चात् प्रेतात्मा ने कहा कि वह लड़की को कुछ दिनों के बाद एक निश्चित दिन छोड़ देगी। इसके बाद प्रणवात्मानन्दजी आश्रम वापस आ गये। परवर्ती काल में उनको उस सज्जन से ज्ञात हुआ कि प्रेतात्मा ने अपने वचनानुसार उस विशेष दिन पर लड़की को छोड़ दिया । लड़की को जब से प्रेतात्मा ने पकड़ा था, उस समय से जो कुछ भी हुआ था, उसका उस लड़की को कुछ भी स्मरण नहीं था।

मैंने उपरोक्त घटना स्वयं स्वामी प्रणवात्मानन्द जी महाराज से सुनी थी।

रामकृष्ण संघ ने मुझे अमेरिका के सियटल आश्रम में सेवा करने के लिए भेजा। प्रणवात्मानन्द महाराज ने मुझे कुछ पत्र लिखकर वहाँ भेजे थे । उन्होंने अपने अन्तिम पत्र को बड़े विनोदी ढंग से लिखा था – ''अब मैंने इस संसार से अपने बचने का मार्ग ढूँढ़ लिया है। एक दिन मैं अपने चिकित्सक से जाँच कराने के लिए गया हुआ था, उसने कहा कि मेरा आधा हृदय चला गया है !'' कुछ महीनों बाद मुझे समाचार मिला कि उनको अचानक हृदयाघात हुआ (heart attack) और वे चल बसे। महाराज को मैं अच्छी तरह जानता था और मैं यह दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि वे अवश्य ही अपने मुख पर प्रसन्नता लिए हुए इस संसार से गये होंगे। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ६६ का शेष भाग

ठाकुर के कहने पर मैंने माँ-काली का प्रसाद खाया और उसके बाद (दूसरे दिन) विष्णु-मन्दिर का भी प्रसाद ग्रहण किया । बड़ी युक्ति लगाकर ऐसा प्रयास करता, जिससे मुझे वहाँ दुबारा न खाना पड़े ।

जो व्यक्ति उनका विशेष प्रिय होता, उसे वे शनि या मंगलवार के दिन आने को कहते । कहते – ''इस कलियुग में नारदीय भक्ति अच्छी है; हृदय में काली, मुख में हरि और मस्तक पर त्रिपुण्डक हो ।''

शनि तथा मंगलवार के दिन अधिक जप-ध्यान करने को कहते । कहते – ''शनिवार मधुवार है ।'' **(क्रमशः)**

संत रविदास की वाणी में जीवन-आदर्श

डॉ. रामनिवास, अजमेर

मानवीय मूल्यों के क्षरण की बात समाज में अनेक बार उठाई जाती रही है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ है, वैज्ञानिक तार्किक चिन्तन का प्रभाव समाज पर पड़ा है, वैसे ही हम आदर्शों को भुलाते जा रहे हैं। नगरीकरण, औद्योगीकरण के प्रभाव से एकाकी परिवारों का उदय हुआ, जिनमें मनुष्य स्वकेन्द्रित होकर केवल अपना हित-चिन्तन करता है। संयुक्त परिवारों का विघटन तेजी से हो रहा है, पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति ने भी अपना प्रभाव भारतीय समाज पर व्यापक रूप से छोड़ा है। नई-नई परम्पराओं का प्रचलन मानवीय स्वतन्त्रता के नाम पर उसे उच्छृंखल भी बना देता है। यहीं से मूल्यों का पतन प्रारम्भ होता है। मैं यह नहीं कहता कि नया सब कुछ खराब है और पुराने आदर्श ही एकमात्र उपयोगी हैं। पुराने और नए आदर्शों का समय की माँग के अनुसार समन्वय उचित है। क्योंकि समय परिवर्तनशील है और इसके कारण हमारे जीवन-मूल्य, आस्था और विश्वास में भी बदलाव आ जाता है। परिवर्तन प्रगति का सूचक माना जाता है और ठहराव को जड़ता बताया गया है। लेकिन जीवन के जो सार्वभौमिक आदर्श हैं, वे पूरी मानव जाति के लिए एक-समान हैं, जैसे दया, न्याय, सत्य, त्याग और अहिंसा।

मध्यकाल जिसे साहित्य के इतिहासकारों ने स्वर्ण युग कहा है, इस साहित्य में मानवीय मूल्यों और आदर्शों को जीने की एक ऐसी सुदृढ़ परम्परा हमें मिलती है, जो आज की नई ऊर्जावान पीढ़ी को प्रेरणा दे सकती है। जीवन के मूल में सत्य की स्थापना अपरिहार्य है, इसलिए मनुष्य को सत्य के प्रति निष्ठावान होना ही चाहिए, चाहे वह जीवन का कोई भी क्षेत्र हो। असत्य प्रारम्भ से अन्त तक मनुष्य को पीड़ित ही करता है, इसलिए इसका त्याग अनिवार्य है। असत्य के बल पर प्राप्त अनीतिपूर्वक सफलता टिकती नहीं और अन्ततः मनुष्य को दुखी करती है। संतवाणी में सत्य की प्रधानता दी गयी है। संतकवि रविदास कहते हैं –

जिन्ह नर सत तिआगिआ, तिन्ह जीवन मिरत समान।
रैदास सोई जीवन भला, जहं सभ सत परधान।।

संत रविदास ने जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा करते हुए परिश्रम करने पर विशेष बल दिया है। वे स्वयं अपनी आजीविका श्रम के बल पर ही चलाते थे। उन्होंने साधुता की सही व्याख्या जनसाधारण के सम्मुख रखी। वे स्वयं अपनी रोजी-रोटी पैतृक व्यवसाय से ही चलाते थे, इसके लिये चाहे जूतों की मरम्मत ही क्यों न करनी पड़े –

रैदास हो निज हत्थहिं राखौ रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारेगा भवपार।।

इनके समकालीन संतकवि कबीर भी अपना पैतृक व्यवसाय कपड़ा ही बुनते थे। उन्हें भी धर्म-अध्यात्म के नाम पर समाज से कुछ भी भौतिक सुख-सुविधा स्वीकार नहीं थी। इन दोनों संतों की भक्ति-साधना का प्रभाव तत्कालीन समाज में इतना व्यापक था कि राजा-महाराजा भी इनका शिष्यत्व ग्रहण कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते थे। संत रविदासजी को मीराबाई एक हीरा भेंट करना चाहती थीं, जिससे उनके गुरु सुखपूर्वक जीवन जी सकें। परन्तु रविदासजी ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। उनका स्पष्ट विचार था कि जिन लोगों में प्रभु की भक्ति और श्रम की साधना है, इस संसार में उन्हीं का जीवन और जन्म सफल है। यह सत्य वचन उन्होंने कइ बार दोहराया –

प्रभु भगति स्रम साधना, जग मँह जिन्हहिं पास।
तिन्हहिं जीवन सफल भयो, सत्त भाषै रैदास।।

'परिश्रम से आजीविका' की विचारधारा को उन्होंने अपने जीवन के उदाहरण द्वारा सिद्ध करके दिखाया, जो आधुनिक युग के धर्मवेत्ताओं की आँखें खोलने में समर्थ है। सत्य-असत्य की परख नहीं होने के कारण अन्धविश्वास अपनी जड़ें जनसाधारण के मन-मस्तिष्क में गहराई से जमा लेता है। इसलिए मनुष्य को स्वयं अपने मन से अनुभव करना चाहिये। वे कहते हैं –

जहं अंध विस्वास है, सत्त परख तंह नांहि।
रैदास सत्त सोई जानि है, जो अनभउ होइ मन मांहि।।

निर्धनता मनुष्य समाज के लिए अभिशाप है। शासन व्यवस्था ऐसी संचालित होनी चाहिए कि सभी व्यक्तियों को भोजन प्राप्त हो। कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहे। छोटे-बड़े सभी एक-समान रहें। किसी प्रकार का भेदभाव नहीं हो। ऐसा समतामूलक राज-समाज मनुष्यों के लिए कल्याणकारी होता है। 'भोजन का अधिकार' नामक कानून देश में अभी लागू हुआ है। किन्तु रविदासजी ने सबके जीवन-यापन करने हेतु पर्याप्त अन्न प्रदान की अनुशंसा की है –

ऐसा चाहौं राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।

छोट बड़ो सभ सम बसैं, 'रैदास' रहे प्रसन्न।।

जन्म और जाति-पाँति को छोड़कर मनुष्य की पहचान उसके कर्म से की जानी चाहिए। संसार में कर्म की ही प्रधानता है। कर्म के अनुसार ही मनुष्य उच्च अथवा निम्न स्तर को प्राप्त होता है। वेदों में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है। सन्त रविदासजी भी कहते हैं –

जन्म जात कूं छाड़ि करि, करनी जान परधान।
इह्यों वेद को धरम है, करै रैदास बखान।।

मनुष्य का प्रकृति प्रदत्त अर्थात् जन्मजात स्वभाव है स्वतन्त्र रहना। वह स्वाभाविक तौर पर किसी भी प्रकार के बन्धन में रहना नहीं चाहता। परतंत्रता के कारण देश और समाज विकास की दौड़ में पिछड़ जाते हैं। इसलिए परतन्त्रता किसी भी स्तर पर और किसी भी प्रकार की हो, वह पीड़ादायी ही है। पराधीन व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र का कोई धर्म नहीं होता। रविदासजी कहते हैं कि पराधीन व्यक्ति को सभी हीन समझते हैं –

पराधीन को दीन क्या पराधीन बेदीन।
रैदास दास पराधीन कौ, सबहिं समझै हीन।।

पराधीनता के अभिशाप के सम्बन्ध में वे और भी स्पष्टता से विचार करते हुए कहते हैं कि पराधीनता चाहे किसी भी प्रकार की हो, विषयभोगों की हो अथवा विदेशी शासन से सम्बन्धित हो, वह पाप ही है। क्योंकि पराधीन से कोई भी प्रेम नहीं करता। पराधीन जीवन अस्तित्व विहीन है। इसलिये उन्होंने मध्यकाल में भी परतन्त्रता से मुक्ति का आह्वान किया –

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
'रैदास' दास पराधीन सौं, कौन करै है प्रीत।।

'नशा' मनुष्य को मानसिक और शारीरिक रूप से असन्तुलित कर देता है, जिससे तन एवं मन दोनों की हानि होती है । संतों ने ऐसे द्रव्यों से दूर रहने के लिए सचेत भी किया है। नशे के कारण मनुष्य उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता। सारे अनुचित कार्यों की बुनियाद नशीले पदार्थों का सेवन ही है। इसलिए संत रविदास कहते हैं कि शराब यदि गंगाजल से भी बनाई जाए तो भी संत पुरुष के लिए वह त्याज्य ही रहेगी –

सुरसरी सलल कृत बारूनी रे, संत जन करत नहीं पान।

व्यक्ति और समाज कोई भी हो और वह किसी भी आर्थिक, सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा हो, उसमें संतोषवृत्ति का होना आवश्यक है। संतोषी प्रवृत्ति से अभावों में भी धैर्य रखा जा सकता है। निर्धनता के कारण मनुष्य का उपहास भी किया जाता है। वह उपहास किसी और के द्वारा नहीं, आसपास के परिचितों द्वारा ही होता है। तब समस्या विकट बन जाती है। संत रविदास भी अपने जीवन में कोई आर्थिक प्रगति नहीं कर पाए। शायद उन्होंने आवश्यकता ही नहीं समझी हो। अपने परिश्रम से जो कुछ प्राप्त हुआ, उसी में निर्वाह करते रहे। परन्तु उनकी दरिद्रता आस-पास के समाज में हँसी का कारण भी बनी। लोगों द्वारा उनकी गरीबी पर हँसने से वे विचलित नहीं हुए। उनकी संतोषवृत्ति और धैर्य ने सब कुछ ऐसे सहन किया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। जीवन में सद्गुण आत्मसात् करने के कारण उनकी निर्धनता भी जीवन की सुन्दरता में बदल गई। ऐसी सुन्दर निर्धनता कि जिसे जीने के लिए प्रत्येक मनुष्य का जी चाहे –

दरिदु देखि सभ को हँसे, ऐसी दसा हमारी।
असटदसा सिधि करतलै, सभ कृपा तुमारी।।

मनुष्य भौतिक सुखों की अधिकाधिक प्राप्ति के लिए धन की वृद्धि करता रहता है। परन्तु आवश्यकता से अधिक संग्रह दुख का कारण भी बनता है। जीवन-निर्वाह में संतोषवृत्ति नहीं रखने वाले तृष्णा की धारा में डूबते हैं, जो अपना मानसिक सुख-चैन खो बैठते हैं। आज अनेक नई-नई बीमारियाँ तृष्णा से उत्पन्न मानसिक तनाव के कारण उत्पन्न हो रही हैं। अत: जीवन यापन में संतोषवृत्ति आज की आवश्यकता है। रविदासजी की वाणी में वैराग्य भावना भी प्रस्फुटित हुई है। मनुष्य भटके नहीं, अत: वे अनेक उदाहरणों से सचेत करते हैं –

धन दारा मँह रहियो मगन नित, गुन्यौ न मीचु कौ ताप।
कहि रविदास गुरु राह दिखावइ, त्रषा बुझि मिटि मन संताप।।

धन और यौवन प्रत्येक मनुष्य को बाँधते ही हैं। इनसे बचा नहीं जा सकता। परन्तु इनमें संतुलन साधना अनिवार्य है। भौतिक उपलब्धि के साथ-साथ जीवन परमार्थ से भी परिपूर्ण होना चाहिए। एक क्षेत्र में विकास और दूसरे क्षेत्र में पिछड़ने से जीवन में पूर्णता नहीं आती। धन-यौवन में मग्न रहने से मनुष्य परमार्थ से खाली रह जाता है। इसलिए संसार की अनित्यता भी समझो। धन और यौवन देखने में सत्य लगते हैं, लेकिन इनसे की गई आशाएँ जीवन में सत्य को उद्घाटित नहीं करतीं –

धन जोबन की झूठी आसा,

सति सति भाषै जन रविदासा।

मानव चेतना स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण लेकर विकसित हो, इसी में मनुष्य का कल्याण है। जिस आदर्शमय सामाजिक जीवन को रविदासजी हमारे सम्मुख रखते हैं, वह मानवीय चेतना पर आधारित स्वतन्त्र विवेकसम्पन्न व्यक्ति और समाज है। उनके अनुभव का व्यक्ति और समाज समतावादी विचारधारा का व्यक्ति समाज है। वे मनुष्य को पूर्णता की दृष्टि से देखते हैं। वे चाहते हैं कि सभी व्यक्ति नैतिक बनें और सद्‌गुणों से विभूषित मर्यादित आचरण करें। भारतीय धर्म-संस्कृति में अहिंसा प्राणतत्त्व के रूप में विद्यमान है। किसी भी प्राणी की हिंसा को स्वीकार नहीं किया जाता। प्रत्येक जीव में प्रभु का वास है। जीवों को मारकर खाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना गया। हिंसा से व्यक्ति निर्मम बन जाता है, जो मानव समाज के लिये भी विभिन्न समस्याएँ पैदा करता है। भोजन का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य के मन पर अवश्य ही पड़ता है। कहा भी गया है –

जैसा खाए अन्न, वैसा होय मन।
जैसा पिए पानी, वैसी होय बानी।

वैदिक सनातन धर्म से लेकर जैन-बौद्ध धर्मों में भी हिंसा का निषेध किया गया है। मध्यकाल में संत काव्य और आधुनिक युग में आर्य समाज ने भी हिंसा का विरोध किया है। भक्तिकाल में संत रविदास ने जीवहिंसा पर बल नहीं दिया। वे कहते हैं –

जीव कूं मुरदा करहिं, अरु खाइहिं मुरदार।
मुरदा सम सभ होइहिं, कहि रैदास विचार।।

अध्यात्म के उच्च गुणों में सेवा की प्रतिष्ठा की जाती है। इसीलिए सेवाधर्म के द्वारा सेवा को ही धर्म बताया गया। यदि मन में सत्य और संतोष के साथ-साथ सेवाभावी प्रवृत्ति हो तो मनुष्य दैवत्व को प्राप्त हो जाता है। सेवा से ही जीवन में सब कुछ, यहाँ तक कि परमात्मा भी मिल जाते हैं। इसीलिए रविदासजी कहते हैं कि सेवाभाव को जीवन में कभी मत छोड़िए –

मन मंहि सत्त संतोष रखहु, सभ करि सेवा लाग।
सेवा सब कुछ देत है, रैदास सेवहि मति त्याग।।

माता-पिता की सेवा के अभाव में महानगरों और छोटे कस्बों में भी आज वृद्धाश्रम खुलते जा रहे हैं। वृद्धाश्रम भारतीय संस्कृति का अंग कभी नहीं रहे। यह सब पश्चिम की व्यस्त जीवन शैली की देन है, जहाँ जीवन मशीनरी के कल-पुर्जों की तरह हो गया है। वहाँ वृद्ध माता-पिता को 'ओल्ड एज होम' भेजने में कोई बुराई नहीं दिखती। लेकिन भारतीय समाजाकि व्यवस्था सेवा, त्याग, सत्य, अहिंसा जैसे आदर्शों पर टिकी हुई है।

जिस मनुष्य के व्यवहार से सभी व्यक्ति, प्राणी, सुख पाते हैं, वही व्यक्ति प्रभु का सच्चा सेवक है। यदि किसी व्यक्ति के व्यवहार से कोई व्यक्ति दुख पाता है, तो वह सच्चा सेवक नहीं माना जा सकता। मनुष्य द्वारा किए गए परोपकारी जनकल्याणकारी कार्य भक्ति के समान हैं –

सब सुख पावै जासु तें, सो हरि जू को दास।
कोउ दुख पावै जासु तें, सो न दास रैदास।।

मानवता के उच्च गुणों को धारण करने के सम्बन्ध में वे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सत्य-पालन, संतोषी प्रवृत्ति और सदाचरण ये मनुष्य जीवन के आधार स्तम्भ हैं। विकारों को त्यागकर ही मनुष्य देवत्व को उपलब्ध होता है –

सत संतोष अरु सदाचार, जीवन के आधार।
रैदास भयै नर देवते, जिन तियागे पंच विकार।।

धर्म सम्प्रदाय सम्बन्धी जितने भी झगड़े हैं, वे सब कृत्रिम और मानव कल्पित ही कहे जाएँगे। मंदिर और मस्जिद, दोनों ही परमात्मा की प्रार्थना करने के स्थान हैं। इसलिए दोनों ही एक हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं है। राम और रहमान का कोई विवाद नहीं। विवाद तो अनुयायी अपने पंथ-सम्प्रदाय को बड़ा मनवाने के अहंकार के कारण करते हैं। रविदासजी ने सर्वधर्म समभाव की आवश्यकता पर जोर दिया –

मंदिर मसजिद दोउ एक हैं, इन मँह अंतर नांहि।
रैदास राम रहमान का, झगड़उ कोउ नांहि।।
रैदास हमारो राम जोई, सोई है रहमान।
काबा कासी जान यहि, दोउ एक समान।

मानवता की एकता, उसकी प्रतिष्ठा में रविदासजी ने अनेक बार दोहराया कि मैंने खूब सोच-विचार कर शोधपूर्वक देखा, तो पाया कि सारी मनुष्य जाति एक-समान है। हिन्दू और मुसलमानों की रचना करनेवाला एक ईश्वर है। इसलिए भेदभाव है ही नहीं। जो बाहरी भेद दिखाई देता है, वह मानवकृत कल्पित और स्वार्थबुद्धि की देन है। वे मनुष्य को मात्र मानवतावादी दृष्टि से देखते हैं –

रैदास पेखिया सोध करि, आदम सभी समान।
हिन्दु मुसलमान कउ, स्रिष्टा इक भगवान।।
रैदास उपजइ सभ इक नूर ते, ब्राह्मण मुल्ला सेख।

सभ को करता एक है, सभ कूं एक ही पेख।।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में सभी क्षेत्रों में उन्नति करने का एक-समान रूप से प्रकृति प्रदत्त अधिकार है। संसार में पूजा सदैव ही गुणवानों की होती रही है, चाहे वे व्यक्ति किसी भी वर्ग, समाज या धर्म के हों। सद्गुणों से हीन व्यक्ति पूजा नहीं जा सकता, चाहे वह व्यक्ति ब्राह्मण ही क्यों न हो। लेकिन यदि गुणवान व्यक्ति चांडाल के घर में भी जन्मा है, तो वह भी पूजा के योग्य है –

रैदास ब्राह्मण मति पूजिये, जउ होवै गुणहीन।
पूजिहिं चरन चंडाल के, जऊ हौवै गुण परवीन।।

जिस धर्म, ग्रन्थ अथवा भक्ति-साधना से मनुष्य समाज में समरसता आती हो, आपसी सद्भाव और भाईचारे का विकास होता हो, वही उपयोगी और अनुकरणीय है। सभी मनुष्यों और धर्मों में एक-दूसरे के प्रति सद्भावनापूर्ण समदृष्टि विकसित होनी चाहिए। यही धर्मों और उनके ग्रंथों का मूल है। रविदासजी कहते हैं –

क्रिस्न करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेषा।
बेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं वेषा।।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख स्वर संत रविदासजी ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन – सर्वधर्म समभाव के मानवतावादी विचार को समाज की अन्तिम पंक्ति के आखिरी मनुष्य तक पहुँचाने का महान कार्य किया है। उनकी धार्मिक चेतना का मूल आधार है – मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना। उनकी दृष्टि परोक्ष भगवान के साथ-साथ प्रत्यक्ष इंसान पर भी उतनी ही गहरी है। वे किसी वस्तु, विचार का अन्धानुकरण नहीं करते। जीवन-आदर्शों को आत्मसात् करने से पूर्व मनुष्य को स्वयं की बुद्धि-विवेक का अनुसरण करना आवश्यक है। OOO

पृष्ठ ८० का शेष भाग

होकर इस लोक तथा परलोक के सुख-दुखों के भोक्ता के रूप में निरन्तर संसार का अनुभव करता है। अत: बड़े प्रयत्नपूर्वक विचार के द्वारा इस बोधाभास-रूप संसारी जीव से शुद्ध बोधरूप कूटस्थ (आत्मा) को अलग कर लेना चाहिये – परमार्थ सत्य, परमानन्द-घन तथा साक्षी-स्वरूप आत्मा में उपाधि के रूप में उत्पन्न साक्ष्य (दृश्य) अविद्या-कल्पित तथा मिथ्याभास होने के कारण उसका कोई अस्तित्व नहीं है। केवल साक्षीरूप परमार्थ तत्त्व ही विद्यमान है – इस विवेक की दृष्टि के द्वारा शुद्ध आत्मा को जान लेना चाहिये।।३।।

भक्त कभी क्रोध नहीं करता

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

अपने हृदय में क्रोधरूपी चाण्डाल को मत बसाओ। चित्त में प्रज्ञारुपी ब्राह्मण को निवास दो। यदि तुमको अपराधी पर क्रोध करना है, तो इस क्रोधवृत्ति पर ही तुम क्रोध क्यों नहीं करते?

अपराधिनि कोपश्चेत कोपे कोपः कथं न ते।

क्योंकि सबसे बड़ा अपराधी तो क्रोध ही है। इसके आने पर हृदय जलता है। नेत्र लाल हो जाते हैं। मुख काला हो जाता है। शरीर काँपने लगता है। बुद्धि नष्ट हो जाती है। इतने बड़े अपराध तो क्रोध ही करता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपन्थिनि।

क्रोध धर्म नष्ट करने वाला है। किसी को दान देते समय यदि उस पर यदि क्रोध आ जाय, तो उन पूजनीय का अपमान हो जाता है। अर्थ का शत्रु भी क्रोध है। व्यापारी को यदि ग्राहक पर क्रोध आए, तो उसे दूकान से निकाल कर वह अपनी ही हानि करता है। क्रोध में कोई भोग पदार्थ प्रिय नहीं लगता। क्रोध चित्त का मल है। वह चित्त को मलिन और विक्षिप्त कर देता है, अत: क्रोध मोक्ष का भी विरोधी है।

एक कथा सुनी थी। एक बार एक महात्मा घूमते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ यमुना किनारे धूनी लगाये कुछ साधु चिलम चढ़ाकर दम लगा रहे थे। वे महात्मा भी उनके पास जाकर बैठ गये। इसी समय एक चाण्डाल वहाँ आकर यमुना में स्नान करने लगा। यह देखकर धूनी वाले साधु बड़े क्रुद्ध हुए। उनमें से एक ने कहा, ''यह हमारे घाट पर स्नान कर उसे अपवित्र करता है।'' उन्होंने जलती लकड़ी धूनी से निकालकर चाण्डाल को मार दी। चाण्डाल ने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप नदी से निकलकर दूर जाकर फिर से स्नान करने लगा। यह देखकर वे महात्मा चाण्डाल के पास गए और पूछा, ''तुमने वहाँ स्नान तो कर लिया था। अब दुबारा क्यों स्नान करते हो?''

चाण्डाल बोला – ''मेरा तो शरीर चाण्डल का है, किन्तु उस साधु के मन में क्रोधरूपी चाण्डाल आ गया था और उसने मुझे छू लिया। उसके मन से मेरे मन में वह न आ जाय, इसलिए दुबारा स्नान कर रहा हूँ। शरीर का चाण्डाल होना वैसा बुरा नहीं है, जैसा मन में चाण्डाल का बस जाना।'' इसलिए भक्त अपने हृदय में कभी भी क्रोध रूपी चाण्डाल को प्रवेश करने नहीं देता। वह अपने हृदय में भगवान को बसाता है। इसलिए भक्त क्षमावान होता है। OOO

(साभार : पृ. १८६-१८७, भक्तियोग, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती)

पत्रावली

प्रव्राजिका मोक्षप्राणा

अनुवादक – डॉ. विप्लव दत्ता

प्रकाशक – स्वामी सर्वात्मानन्द, सचिव, रामकृष्ण सारदा आश्रम, डाक बंगला रोड, ग्राम- तुणगी, पो. देवप्रयाग, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड-२४९३०१, ई-मेल : rmksarada@gmail.com, वेबसाइट : www.rksaradadprayag.org

पृष्ठ-१७६, मूल्य – १००/-

मानवीय विचारों की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण और सशक्त माध्यम पत्राचार है । पत्राचार में व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के द्वारा दूसरों के प्रति अपनी मनोदशा को प्रकट करता है । कभी-कभी सीधे सम्वाद न होने की स्थिति में पत्राचार के द्वारा दूरस्थ जनों का मार्गनिर्देशन किया जाता है, उनकी सहायता की जाती है । इसलिये महान पुरुषों के पत्राचार पुस्तकाकार में आज भी समाज को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं ।

श्री सारदा मठ और रामकृष्ण सारदा मिशन की द्वितीय महाध्यक्षा पूजनीया परिव्राजिका मोक्षप्राणा माताजी की सद्य: प्रकाशित पत्रावली अध्यात्मिक जीवन यापन करनेवाले भक्तों के लिये बहुत लाभप्रद है । यह पुस्तक अध्यात्मपिपासुओं को परोक्ष सत्संग तो प्रदान करती है, साधनात्मक और व्यावहारिक निर्देश भी प्रदान करती है । साधकों को सावधान करते हुये एक पत्र में माताजी लिखती हैं – ''परीक्षाथी छात्र जिस प्रकार कठोर परिश्रम कर स्वेच्छानुसार परिणाम प्राप्त कर लेता है, ठीक वैसे ही आध्यात्मिक पथ में भी है । प्रयास नहीं करने से किसी को कुछ नहीं मिलेगा । आध्यात्मिक पथ बहुत कठिन है । उस कष्टमय पथ को जो आनन्द के साथ अपनाकर उस पर अग्रसर होने के लिये जी-जान से प्रयत्न करता है, वह परम लक्ष्य में पहुँचने में सफल होता है ।'' एक अन्य पत्र में माताजी लिखती हैं, '' देखो, जबतक मनुष्य आत्मसन्तुष्ट नहीं है, तब तक वह दूसरे को वास्तविक सन्तुष्टि नहीं दे सकता । केवल प्रकाश ही प्रकाश दे सकता है । श्रीमाँ सारदा स्वयं देवी जगदम्बा थीं, इसलिये उन्होंने मानवता को दैवी प्रकाश प्रदान किया, ताकि लोग इस सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर सकें ।''

इस प्रकार यह पुस्तक साधकों, भक्तों और पवित्र आाध्यात्मिक जीवनयापन करनेवालों के लिये वरदानस्वरूप है । इस पुस्तक का अनुवाद रायपुर के डॉ. विप्लव दत्ता जी ने किया है, जो धन्यवादार्ह हैं । ○○○

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन, विजयवाड़ा द्वारा २६ और २७ नवम्बर, २०१७ को 'विवेकानन्द के अनुसार व्यक्तित्व विकास' संगोष्ठी का आयोजन विवेकानन्द विद्या विहार, रामकृष्ण मिशन, सीतानगरम् में शिक्षकों और छात्रों के लिये किया गया, जिसमें २५० शिक्षकों और ३३० छात्रों ने भाग लिया। व्यक्तित्व विकास पर निबन्ध भी लिखवायें गये और उनमें से चयनित २० निबन्धों को पुरस्कृत किया गया।

'झारखण्ड सम्मान' से पुरस्कृत

रामकृष्ण मिशन दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र, राँची, मोरबादी, झारखण्ड को ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्यों हेतु झारखण्ड के मुख्यमन्त्री श्रीरघुवर दास जी ने 'झारखण्ड सम्मान' से सम्मानित किया गया।

रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा ने ३ नवम्बर, २०१७ को आदर्शोन्मुखी शिक्षा पर कार्यक्रम किया, जिसमें २०० छात्र उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के छात्रों ने १ नवम्बर, २०१७ को बिरला इंडस्ट्रीयल एन्ड टेक्नोलोजिकल म्यूजियम, कोलकाता द्वारा राँची में आयोजित राज्यस्तरीय विज्ञान सेमीनार में प्रथम और द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया।

रामकृष्ण मठ, हरिपाद ने १७ और २० नवम्बर, २०१७ को ३ विद्यालयों में आदर्शोन्मुखी शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें ४२८ छात्रों ने भाग लिया।

शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो (अमेरिका) के शिकागो हॉल में २८ और २९ अक्टूबर, २०१७ को सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें ४०० लोगों ने भाग लिया।

स्वामी विवेकानन्द की ५ मूर्तियों का अनावरण

रामकृष्ण मिशन, डरबन (दक्षिण अफ्रिका) में रामकष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष और रामकृष्ण मठ-मिशन के वरिष्ठ सह-संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने डरबन के उपकेन्द्रों चैट्सवर्थ और फीनीक्स में १८ और २१ नवम्बर, २०१७ को स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का अनावरण किया। उन्होंने २६ नवम्बर को डरबन के आडोटोरियम में आयोजित भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्म-जयन्ती और वर्षभर चल रहे आश्रम की प्लेटिनम जुबली महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित सार्वजनिक सभा में व्याख्यान दिया। सभा में वहाँ के मिनिस्टर-इन-चार्ज स्वामी सुमनसानन्द, स्वामी यादवेन्द्रानन्द और स्वामी सारदाप्रभानन्द जी आदि ने भाग लिया। कार्यक्रम में लगभग ११०० भक्त उपस्थित थे। इसके पूर्व सह-संघाध्यक्ष स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण सेन्टर आफ साउथ अफ्रिका, डरबन में ११ सितम्बर, २०१६ को स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का अनावरण किया था। २६ नवम्बर, २०१७ को दक्षिण अफ्रिका के लेडीस्मीथ में सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्दजी ने स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति का अनावरण किया। ३० जुलाई, २०१७ को दक्षिण भारत के नीउकास्टल उपकेन्द्र में स्वामीजी की मूर्ति का अनावरण रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी स्वामी बोधसारानन्द जी ने किया, जिसमें स्वामी सर्वलोकानन्द, स्वामी सुमनसानन्द, स्वामी स्वात्मरामानन्द आदि उपस्थित थे।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा राहत-कार्य किये गये –

शीत राहत कार्य – अलांग ने ६५, आसनसोल ने २४, वराहनगर ने ३००, भोपाल ने ३००, कटक ने २००, गोहाटी ने ३००, हातमुनिगोड़ा ने २५०, इच्छापुर ने ३००, इन्दौर ने ५००, जम्मू ने १०२, जामतारा ने ५५०, मनसाद्वीप ने २००, नरोत्तमनगर ने ५१९ कम्बल वितरित किये। मायावती आश्रम ने ६४ जैकेट और २१७६ जोड़ी मोजे, नरेन्द्रपुर ने ३२०२ स्वेटर और टोपी और ऊँटी ने १८०२ स्वेटर और ४९८ टीशर्ट, और ३६७७ जैकेट वितरित किये।

बाढ़-राहत कार्य

रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा ने १२० ठेला-गाड़ी, बनांसकाठा के धनेरा में वितरित की। ○○○